Printed and Published by
K. Mittra, at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad

प्रस्तावना

आज से लगभग ३५ वर्ष पहले जब मैंने अपने गुरु पडित नन्दकुमार जी त्रिपाठी से 'रघुवश' का अध्ययन किया था तब मेरे हृदय में यह प्रश्न उठा था कि क्या रघुवश जैसा कोई "दैत्यवश" काव्य भी है। एक दिन गुरु जी से उस सम्बन्ध मे प्रश्न करने पर उत्तर मिला कि ऐसे दुष्ट काव्यो के नायक नही हो सकते इसी से शायद ऐसा काव्य नही लिखा गया है। गुरुवर के इस उत्तर से मेरे मन में यह भाव तत्काल उदय हो आया कि ऐसा काव्य अवश्य लिखा जाना चाहिए, परन्तु उस समय इस ओर अपने को इसलिए भी प्रवृत्त न कर सका कि गुरुवर के निषेध का डर था।

कालान्तर में जब मैने वाल्मीकीय रामायण और श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया और हरिवश पुराण सुनकर राक्षसो, असुरो और दैत्यो के चरित्रो का विवेचनात्मक विश्लेषण किया तब मेरे हृदय में उस पहले की धारणा ने और भी ज़ोर मारा, क्योकि इस अध्ययन से मुझे विश्वास हो गया कि दैत्यो और राक्षसो के चरित्रो से भी काव्योचित सामग्री भले प्रकार सकलित की जा सकती है। इसके बहुत दिनो के बाद श्री माइकेल मधुसूदन दत्त का 'मेघनाद-वध' देखने में आया। उसे पढकर मुझे पूरा विश्वास हो गया कि पुराण के इन उपेक्षित पात्रो को लेकर बहुत सुन्दर चीज़ लिखी जा सकती है। इधर जब 'साकेत' मे उर्मिला के दर्शन हुए, उससे मुझे 'दैत्यवश' के लिखने की और भी प्रेरणा मिली।

इस समय तक मैं कुछ टूटी-फूटी काव्य-रचना कर लेने लगा था। 'नागानद' और 'वेणीसहार' के अनुवाद भी कर चुका था और 'रीतिरत्न' एव 'रीतिरत्नाकर' जैसे ग्रन्थ भी लिख चुका था। इनमें से जब 'नागानन्द' देहली-बोर्ड के द्वारा और 'रीतिरत्न' राजपूताना-बोर्ड से द्वारा पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत हो गया, और आगरा-यूनीवर्सिटी ने मेरी 'सूर-मुक्तावली' के सक्षिप्त सस्करण को बी० ए० में पाठ्य-पुस्तक के रूप से स्वीकार कर लिया तब मित्रो ने मेरी पीठ ठोकी और स्वतन्त्र काव्यग्रन्थ लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। इनमें आगरा-निवासी श्री चतुर्वेदी अयोध्याप्रसाद जी पाठक बी० ए०,

एल-एल० बी० एडवोकेट और प० हृषीकेश जी के नाम विशेष रूप मे उल्लेख-नीय है। इन्ही महानुभावो की प्रेरणा से मैने 'दैत्यवश' लिखना आरम्भ कर दिया।

सौभाग्यवश इसी वर्ष मुझे इडियन प्रेस के अध्यक्ष श्रीयुत बाबू हरिकेशव घोष महोदय का आश्रय मिला, और उन्ही के पाणिपल्लव की छाया में रह-कर प्रयाग में मैने इसे समाप्त किया। इसकी प्रस्तावना 'सरस्वती' के सम्पादक पडित उमेशचन्द्र मिश्र विद्यावाचस्पति ने लिखने का कष्ट उठाया है, अत इस अनुकम्पा के लिए मै उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

यह पुस्तक कैसी है, इस सम्बन्ध मे मुझे कुछ नही कहना है। अपनी रचना पर सबकी ममता होती है और इस पर मुझे भी है। परन्तु यदि साहित्य-मर्मज्ञो ने इसे पसन्द किया तो मै अपने परिश्रम को सफल समझूगा।

प्रयाग
होलिका, स० १९९६

विनयावनत
श्री हरदयालुसिंह

भूमिका

अभी कुछ ही दिनो की बात है, काव्य-भाषा के प्रश्न पर हिन्दी-साहित्यिक दो दलो में बँटे हुए थे। किन्तु इन कुछ ही दिनो में आधुनिक हिन्दी की वास्तविक काव्य-भाषा ने भाव-व्यजना की प्रौढता, शैली की वक्रता, शाब्दिक चमत्कारव्यापक अनुभूतियो के व्यक्तीकरण का सामर्थ्य आदि सभी दृष्टियो मे इतनी उन्नति कर ली है कि साहित्य का आधुनिक विद्यार्थी आज यह अनुमान भी नही कर सकता कि इस 'खडी बोली' कही जानेवाली साहित्यिक-हिन्दी की 'ब्रजभाषा' के साथ भी कभी प्रतिद्वन्द्विता रही होगी। आज 'खडी बोली' को' ब्रजभाषा' की ओर से किसी प्रकार का खतरा नही रहा है। किन्तु जिस भाषा के माध्यम से हिन्दी-प्रदेश के करोडो नर-नारियो ने दस-बीस नही, लगभग चार सौ साल तक अपनी अनुभूतियो, कल्पनाओ, भावनाओ और विचारो को व्यक्त किया है, जो आज भी हिन्दी-प्रदेश के एक विशिष्ट भू-भाग की जीवित बोली है, एव जिसके प्रकृत-माधुर्य की प्रशसा आज भी देश-विदेश मे फैली हुई है, उसे एक बारगी काव्य-क्षेत्र से बहिष्कृत नही किया जा सकता। इसमे सन्देह नही कि ब्रजभाषा ने काव्य का क्षेत्र खडी बोली के लिए एकदम खाली कर दिया है, उसने अपने सब अस्त्र डाल दिये है, किन्तु हम सूर, तुलसी, बिहारी, मतिराम, घनानद, पद्माकर आदि अमर कवियो की काव्य-वाणी को जीवित रहने के अधिकार से वचित नही कर सकते। कदाचित् खडी बोली के कट्टर से कट्टर हिमायती की यह इच्छा न होगी। इसी लिए अपने गुप्त, प्रसाद, पत, महादेवी आदि नवीन कवियो की नवीनता से हम इतने नही चौंधिया जाते कि सत्यनारायण, रत्नाकर और वियोगी हरि की ओर दृष्टिपात भी न कर सकें। वास्तव में हिंदी के गभीर साहित्यिको ने इन प्राचीन परिपाटी के कवियो का कम सम्मान नही किया है। सच तो यह है कि ये महानुभाव हमारे अधिक आदर के पात्र है, क्योकि एक तो वे हमारे प्रिय प्राचीन सस्मरणो में नई जान फूकने का प्रयत्न करते रहते है, दूसरे उन्हें अपने कवित्व पर इतना भरोसा है कि भाषा का बधन उन्हें ज़रा भी नही अखरता।

भाषा पर विवाद करने के दिन अब नही रहे। काव्य किसी भी भाषा में हो, यदि उसमें काव्य के आवश्यक गुण है तो अवश्य अभिनन्दनीय

होगा। इसलिए आधुनिक काल मे निकलनेवाले ब्रजभाषा के काव्य को हम प्राचीनता के प्रति केवल कुतूहल-मात्र से नही देख सकते। हमे उनके द्वारा व्यक्त होनेवाली मानव-भावनाओ की भी परख करनी पडेगी, अर्थात् भाषा के विचार को एक ओर रखकर हम उन्हे भी कवित्व की कसौटी पर ही कसेगे।

दैत्यवंश महाकाव्य—में पुरानी भाषा मे, पुराने छन्दो मे, पुरानी काव्य-परिपाटी पर एक पुराने कथानक को काव्य का रूप दिया गया है। सब कुछ पुराना होते हुए भी यदि उसमें वास्तविक कवित्व है, तो उसमे कुछ भी पुराना नही, वह चिर-नवीन है, प्राचीन वस्त्राभरण से ढँका हुआ वह रूप-सौन्दर्य है जो सब कालो मे, सब देशो में, एक समान मानव-आत्मा को आन्दोलित करता रहा है, और करता रहेगा।

आजकल हम अपनी पौराणिक कथाओ से इतने अनभिज्ञ हो गये है कि प्राचीन देवी-देवताओ के नाम तक सुनकर हमे विस्मय और कुतूहल होता है, मानो हमारा जातीय जीवन इन्ही पिछले सौ-पचास साल का है और उसकी समस्त प्रेरणायें किसी दूर देश से लाकर इस अपरिचित भू-भाग मे कैद कर दी गई है। ऐसे जमाने मे हम देव-वंश की कथा को भी काव्यरूप में ढालकर अपने नवीन शिक्षित समुदाय से केवल उपेक्षाजन्य हलकी मुस-कराहट की ही आशा कर सकते हैं। और वह मुसकराहट 'दैत्यवंश' का तो नाम ही सुनकर कदाचित् अट्टहास में बदल जायगी। परन्तु यदि हमें प्राचीनता के नाम से ही मुह बिचकाने की उतावली न हो, और तनिक धीरज धरकर हम सोचने का कष्ट करें तो मालूम होगा कि हमारे प्राचीन साहित्य मे तथा धार्मिक कहे जानेवाले पौराणिक ग्रन्थो में मानव की भावनाओ, कल्पनाओ और विचारो का कैसा अक्षय्य कोष भरा हुआ है। हम कितने सम्पन्न है, यह बात आँख रहते हुए भी हम नही देख पाते। इससे अधिक दुःख की बात और क्या होगी ?

साधारणतया लोग देवो में सद्गुणो और दैत्यो में असद्गुणो की भावना करते हैं, किन्तु पौराणिक आख्यानो के पढने-सुननेवाले जानते है कि देवो में निरे दिव्यगुण ही नही है। छल-प्रपंच, स्वार्थपरता, विश्वासघात, माया, असत्य आदि मानवीय कमजोरियाँ उनमे भी विद्यमान है और अपने प्रतिद्वन्द्वी दैत्यो से कुछ अधिक मात्रा में ही। फिर भी परम्परा से देवो को जितनी सहानुभूति प्राप्त हुई है उसका शतांश भी दैत्यो को नही मिला—अमृत का सारा घट देवो ने ही साफ कर दिया, बेचारे राहु ने चोरी से अपनी अंजलि बढाई तो उसके दो टुकड़े कर दिये गये। हम देवताओ के गुण

गाने में अपनी सारी कुशलता समाप्त कर देते है और यह भूल जाते है कि यह अमर-वृन्द चोरी के अमृत से अमर वन सका है। मानवो का देवताओ के प्रति यह अनुचित पक्षपात देखकर कदाचित् 'दैत्यवश' के कवि का हृदय भर आया और उसने दैत्यो को मानवीय सहानुभूति का क्वचिदश प्राप्त कराने के उपकरण जुटाने का निश्चय कर लिया। 'दैत्यवश-महाकाव्य के पाठक देखेंगे कि देवताओ में दैत्यो की अपेक्षा कमजोरियाँ अधिक मिलती है, साथ ही दैत्यो में निरे अदिव्य गुणो का ही समावेश हो, ऐसी वात नही है। उच्च आदर्श उनमें भी उसी प्रकार पाये जाते है, जिस प्रकार देवताओ मे। केवल इस अपराध में कि देवताओ का उनसे वैर है, हमें उसके विरुद्ध फैसला नही दे देना चाहिए।

किन्तु देवपक्ष के प्रति लोकमत की कवि ने अवहेलना नही की है, वल्कि कही कही तो वह भूल-सा गया है कि उसके चरित-नायक देवता नही, दैत्य है। यहाँ हम पाठको का ध्यान इन्द्र के मानसरोवर मे छिपने तथा हसदूत भेजने के प्रसग तथा वामन-जन्म की कथा की ओर अकर्पित करते है। लोकमत की अवहेलना करने का साहस या दुस्साहस वँगला के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्त में था, जिन्होने राम के विरोधी—लोकमत के विरोधी—राक्षसो को अपनी सहानुभूति देने में तनिक भी सकोच नही किया था। भले ही वे अमरकथा को उलट देने में—उलटी गगा वहाने में—सफल न हुए हो, फिर भी उनका 'मेघनाद-वध' भारतीय काव्य-साहित्य का एक अमर ग्रन्थ है। 'दैत्यवश-महाकाव्य' के कवि ने उलटी गगा वहाने का प्रयत्न भी नही किया। उसने तो श्रीमद्भागवत से अपनी कथा-वस्तु चुनकर तथा उसमें अपनी आवश्यकताओ के अनुसार जहाँ-तहाँ हेर-फेर करके उसे काव्य का रूप दे दिया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने जहाँ कही राक्षसो का वर्णन किया है, वहाँ उनके हृदय में पैठकर उनकी सूक्ष्म भावनाओ को जानने की उन्हें आवश्यकता तक नही जान पड़ी। कदाचित् उन्हें इसमें अपनी प्रतिभा के अपव्यय की सभावना थी, परन्तु 'दैत्यवश-महाकाव्य' के कवि को इस चिर-तिरस्कृत वश के चरित-वर्णन करते समय भी काफी सकोच है और इस गुरुतर कार्य को करते हुए अपनी क्षमता में भी उसे सदेह होने लगता है। इसी लिए वह दैत्यो के वर्णन की सामर्थ्य-भिक्षा माँगने के लिए देवताओ के पास पहुँचा है। 'सरस्वती' से प्रार्थना करता हुआ वह कहता है—

दैत्यवस सभव नरेसनि चरित चारु—
पारावार पार तौ करत बनिहै नही।

× × ×

या ते रसना पै आनि बैठी पदमासनि जू
पाय अवलम्ब दास स्रम गनिहै नही ॥

वह देवताओ का भक्त है, इसमें शक नही, और देवताओ के ही नाते वह उनके बधुओ के चरित्राकन मे हर्ष और उत्साह मानता है—

याही काज देवनि के बधु दैत्यबसिन को,
रुचिर चरित्र चारु प्रमुदित गायहौं ।

'दैत्यवश-महाकाव्य' का चरित-नायक कोई एक व्यक्ति नही, वरन समस्त दैत्यवश—राजा हिरण्याक्ष से लेकर स्कद तक है। पीछे हमने इसके पुरानेपन का ज़िक्र किया था, परन्तु एक सपूर्ण वश को महाकाव्य के रूप मे प्रस्तुत करने का हिन्दी मे यह नवीन प्रयास है। निस्सदेह इस प्रकार के काव्य की प्रेरणा कवि को महाकवि कालिदास के रघुवश से प्राप्त हुई है।

यहाँ हम 'दैत्यवश-महाकाव्य' के कथानक को दुहराकर पाठको के साथ अन्याय नही करेंगे, क्योकि जिस बात के लिए कवि ने इतना श्रम उठाया है, अपनी काव्य-प्रतिभा का व्यय किया है, उसे गद्यमयी भाषा मे, सक्षेप में, कह देना अनुचित होगा। इस ग्रथ के नामकरण के साथ ही 'महाकाव्य' का शब्द जोड दिया गया है, मानो कवि ने आलोचको पर विश्वास न करके स्वय उनका काम कर देने की ठानी हो। इसलिए पाठको के मन मे सबसे पहले इस ग्रथ के महाकाव्यत्व के विषय मे प्रश्न उठेगा। हम भी इसी प्रश्न से आरम्भ करते है।

महाकवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण लिखकर महाकाव्य के रूप से ससार को पहली बार परिचित कराया था। इसके उपरान्त महाकाव्यो की परिपाटी चल पडी और जिसने अपने को 'महाकवि' समझा उसी ने एक महाकाव्य लिख डाला। महाभारत सभवत ससार का सबसे बडा महाकाव्य है। रघुवश, माघ, किरात, नैषध आदि ही सर्वमान्य महाकाव्य है। यह परपरा शताब्दियो तक चलती रही और आज भी किसी न किसी रूप में चल रही है। सस्कृत से यह प्रवृत्ति हिन्दी में भी आई और फलत पद्मावत, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका आदि का निर्माण हुआ। बीसवी सदी मे लोगो का विश्वास था कि यह गद्य का युग है, फलत इसमे काव्य के विस्तार के लिए यथेष्ट अवकाश नही है। फिर भी इसमें महाकाव्य निकले और कई निकले।

उदाहरणार्थ रामचरित-चिन्तामणि, प्रियप्रवास, साकेत, सिद्धार्थ, हल्दी-घाटी, 'पुरुपोत्तम' आदि तथाकथित महाकाव्यो के नाम गिनाये जा सकते है। हिन्दी में ऐसी शीघ्रता से एक के वाद एक महाकाव्य का प्रकाशित होना यह सिद्ध करता है कि 'महाका य' लिखने और 'महाकवि' कहलाने के प्रति हिन्दी के कवियो के हृदयो में पुराने कवियो की अपेक्षा अधिक मोह है।

'महाका य' की परिभाषा प्राचीन काव्यशास्त्र ने इन शब्दो में दी है—

"महाकाव्य सर्गवद्ध होना चाहिए। उसका नायक कोई देवता या सद्वशोद्भव क्षत्रिय जो धीरोदात्त गुणान्वित हो, होना चाहिए। एक ही वश में जन्म लेनेवाले अनेक राजा भी इसके नायक हो सकने है। शृगार, वीर और शान्त इसके अगीरस हो, अर्थात् महाकाव्य में इन तीनो में से किसी एक की प्रधानता रहे। शेप रसो की भी समुचित अवतारणा रहे। नाटक की सभी सधियाँ इसमें हो। इसका कथानक इतिहास-सम्मत या परपरा प्रसिद्ध हो। उसमें चार वर्ग हो, और एक फल हो।

"आदि में नम क्रिया अथवा वस्तु निर्देशात्मक या आशीर्वादात्मक मगलाचरण हो। कही-कही पर दुर्जनो की निन्दा और सज्जनो की प्रशसा भी हो। एक सर्ग मे एक ही प्रधान छन्द हो, जो उसके अन्त में वदल दिया जाय। सर्ग न वहुत वडे हो और न वहुत छोटे, और उनकी सख्या ८ से अधिक हो। यदि एक ही सर्ग में कई प्रकार के वृत्त या छन्दो का प्रयोग किया जाय तो भी कोई हानि नही। सर्गान्त में आगामी सर्ग की कथा की सूचना हो। यथायोग्य सागोपागो के सहित उसमें सध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, ध्वान्त, दिवस, प्रात, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, समुद्र, सभोग, विप्रयोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, रणयात्रा, विवाह, मत्र, पुत्रोत्पत्ति आदि का वर्णन हो। उसका नाम कवि के नाम, कथावस्तु, नायक के नाम आदि के आधार पर हो और सर्गों का नाम कथा के आधार पर हो।"

इस महाकाव्य में दैत्यवश के 'भूपाल' नायक है, जो सभी धीरोदात्त गुण-वाले है। प्रथम सर्ग के ४ से लेकर १० छन्दो तक इन भूपालो का जो गुणानुवाद किया गया है तथा वलि की शालीनता, दानशीलता व पराक्रम का जैसा उल्लेख हुआ है उससे इनके धीरोदात्त होने में सन्देह नही रह जाता। इसमें कुल १८ सर्ग है। सर्ग में एक ही प्रकार के छद की प्रधानता है। सर्गान्त में छन्द भी वदल दिये गये है और उनमें आगामी सर्ग की कथा का सकेत भी विद्यमान है। शृङ्गार और वीररस इसमें प्रधान है। शेप रसो की भी यत्र-तत्र अवतारणा हुई है। कथानक पुराण-विश्रुत है। कवि-कल्पना-

चढाई करने को प्रस्तुत हो गया। परन्तु शुक्राचार्य ने यहाँ दैत्यो को सतर्क कर दिया और विरोचन को गद्दी से उतरवाकर वलि को राजा वनवाया, क्योकि वलि विरोचन की अपेक्षा अविक बुद्धिमान् था, उसके देवताओ की चाल में फँसने की कम सभावना थी।

महाराज वलि 'दैत्यवश-महाकाव्य' के सवमे प्रधान—मध्यनायक है, उसी तरह जैसे रघुवश के रामचन्द्र। परन्तु वे भी देवताओ की चालो से नही वच पाते। देवतागण उन्ही का नाश उपस्थित कराने के लिए समुद्रमथन कराते है। फिर वासुकी की पूँछ स्वय पकडते है और फन दैत्यो से पकडाते है, जिससे क्षुव्घ वासुकि के मुख से निकलते हुए गरल से भी दैत्यो को पीडित होना पडता है। वँटवारे में भी काफी चालाकी से काम लिया जाता है। स्वार्थपरता तो मानो देवो के वाँट पडी है। वे स्वय लेना चाहते है लक्ष्मी, रभा, गज, रत्न और अमृत और आवे के साझीदार दैत्यो को देना चाहते है वारुणी और विप! यदि भाग्यवश दैत्य इस चालाकी को ताड जाते है और अमृतघट को ले जाकर अपने घर मे रख लेते है तो देव रात को उसे वहाँ से चुरवा लेते है। वँटवारे मे अमृत का घट स्वय खत्म कर देते है और वेचारे दैत्यो को वारुणी परोमी जाती है। राहु यह कौशल समझकर अमृत पीने के लालच से देवो में जा वैठता है तव उसके दो खड कर दिये जाते है।

समुद्र-मथन के प्रसग मे लक्ष्मी के स्वयवर की कथा कवि ने वडे कौशल से वर्णन की है। यह तो विदित ही है कि लक्ष्मी ने दैत्यो की ओर कोई रुख नही किया, परन्तु इसके कारण वलि को आत्मग्लानि हुई हो, ऐसी वात नही है। स्वय वलि ने भी लक्ष्मी के प्रति उदासीनता ही दिखाई है। वलि की सयमशीलता पर सरस्वती तक को आश्चर्य हुआ है—

सिन्धुजा के मन आई नही,
बलि हू तेहि ओर न नेकु निहारो।
सो गुनि भारती ने हिय माँहि,
अवभित ह्वै कछू आप विचारो।

लक्ष्मी के स्वयवर की कथा श्रीमद्भागवत में भी है, परन्तु उसमें लक्ष्मी अकेली ही देवताओ की मडली में घूमती हुई एक एक करके उनमें दोप दिखाती जाती है। यहाँ कवि ने सरस्वती को उसके साथ कर दिया है। सरस्वती लक्ष्मी को सव देवताओ का परिचय देती जाती है। इन परिचयो मे

कवि ने बड़े विदग्ध वर्णन किये हैं। वासुकी का परिचय देती हुई सरस्वती कहती है—

सम्भु के सीस सों बाल मयंक,
पियूष को एक ही जीभ निकारी।
दूसरी त्यों रसना को बढ़ाय,
गहैं अधरा को सुधा जहँ धारी।
एक ही साथ दुहून को चाखि कै,
कामैं धर्‍यो विधि स्वाद सँभारी।
सो झगरो निपटाइबै को,
बस वासुकी एकै भयो अधिकारी।

इन्द्र की सिफारिश करती हुई वह मधुर व्यंग्य के साथ कहती है—

ठानियो रार पुलोमजा सों जनि,
औ अदितीं को सँतोषहि दीजियो।
पाय सुरेस सों नायकै आपु,
सबै सुख जीवन के उत कीजियो।

इसी प्रकार शिव जी के परिचय में अच्छा खासा मजाक किया गया है। शिव जी के जीवन में विरोधाभास-द्वारा प्रतिष्ठित व्यंग्य देखने योग्य है—

जाचकै देत हैं विश्व विभौ,
अपने तन पै गज खाल सँवारत।
जोगिन में सब सों है बड़े,
पै तियाहि सदा अरधंग में धारत।
लीन्हें त्रिसूल रहै कर में,
तऊ दासनि के भ्रम सूलनि टारत।
जारि ही देत सबै जग को,
जब तीनो विलोचन खोलि निहारत।

शिव के वर्णन में उत्पन्न पाठक के होंठो का ईषत् हास ब्रह्मा का परिचय सुनकर खुल पड़ता है—

"तीनहू लोक के ये करता,
अरु चारहू वेद बनावनवारे।
दाढ़ी भई सन-सी सिगरी,
सिर पै कहूँ केस न दीसत कारे।

नारद सो इनके है सपूत,
तिहूँपुर ज्ञान सिखावनहारे।
प्रेम की पास में बाँधन को,
तुम्हे वृढे ववा इत है पगु धारे॥

× × ×

मेलिकै कठ मधुक की माल,
इन्हे तुम आजु कृतारथ कीजियो।
औसर मगल गावन काज,
हमें निज वृद्ध विवाह मे दीजियो।
त्योही विनोद विहारनिको,
इन सो मिलिकै सिगरो रस लीजियो।
पै गृह-जीवन के सुख को,
तपसी घर में रहि साध न कीजियो॥

इसके बाद लक्ष्मी विष्णु के निकट पहुँचती है। कवि ने उसके सात्विक भावो की ओर सकेत किया है—

ठाढी जकी-सी छिनैक रही,
कर्तव्यहु को न सकी निरधारी।

विष्णु के प्रति लक्ष्मी का अनुराग सरस्वती को विदित है। इसी लिए जब लक्ष्मी विष्णु के सामने पहुँचती है तब सरस्वती को चुटकी लेने का अच्छा अवसर मिल जाता है। वह कहती है—

"आगे चलो सखि देखै वरै परिचय इनको हम कैसे करावैं।
मो अवला की कहा गति है सहसानन हू कहि पार न पावै॥"

सारा मजा "आगै चलो सखि देखै वरैं" में छिपा हुआ है।

लक्ष्मी का विष्णु के प्रति यह अनुराग देखकर दैत्यो के हृदय जलने लगे और उन्होने कमला की मति को भ्रमाने के लिए विष्णु के रूप धारण कर लिये। लक्ष्मी अनेक विष्णुओ को देखकर बडी चकराई। शिव को भी इस मज़ाक में खूब मजा आया। कवि का यह वर्णन बहुत सुन्दर है—

देखि तहाँ हरि बैठे अनेक,
लगे मुसकान कछूक त्रिलोचन।
त्यौं भ्रम मैं परि सिन्धु-सुता,
पहिराय सकी नहि माल सकोचन।

यहाँ पर भी कवि ने वलि की महत्ता की ओर सकेत किया है—

वाकी लखे दयनीय दसाहि,
लगे अपने मन मै वलि सोचन।
जानि रहस्य सँकेतहि सों,
नृप आपु निवारि दियो तिन पोचन ॥

रस की दृष्टि से लक्ष्मी का स्वयवर शृगार के ही अन्तर्गत माना जायगा। ये समस्त हास-परिहास के भाव उसी के सचारी हैं। परन्तु कवि ने उस स्थायी भाव को वहुत सक्षेप में—केवल किंचित् सात्विक भावो को दिखाते हुए वर्णन कर दिया है—

देखि अचानक और की ओर,
सँकोचि मधूक की माल सँवारी।
त्यों दुओ कम्पित हाथ उठाय,
दियो पुरुषोत्तम के गर डारी।
लाजन वोलि सकी न कछू,
कृस देह भई पै रोमचित सारी।
औ सखियानि कै सग समोद,
विनोद-भरी निज गेह सिधारी ॥

इसी सर्ग में देवताओ के अमृत चुराने के षड्यन्त्र का भी उल्लेख है। शिव जी के स्त्री-रूप के वर्णन में कवि ने प्राचीन उपमा-उत्प्रेक्षाओ का वहुत अच्छा उपयोग किया है।

देवताओ की चालो मे परेशान होकर दैत्यो के पास केवल एक चारा रह जाता है—अपनी शारीरिक शक्ति से देवताओ को छकाने का। इस युद्ध में दैत्य विजयी होते है, परन्तु किसी छल-वल से नही, शुद्ध शारीरिक शक्ति के द्वारा। यहाँ पर दैत्य सेनापति वाण की उदात्त एव दिव्य भावना की देवताओ के सेनापति कार्त्तिकेय की कठोर कर्त्तव्य की दुहाई दर्शनीय है।

वाण कहता है—

अनरीति इमि तुम करत कत विसराय पूरव नेह कौ।
मैलो कियों गौरी वसन निज धूरि धूसर देह सो।
तुम सग ही पय पान कीन्ह्यो वैठि गिरिजा-गोद मे।
सीखे चलावन वान हम तुम सम्भु ही सो मोद मे।

यहि लागि तुम सो कहत नातो वन्धु को निरवाहिये।
करुना-यतन को भुवन-हिय येतो कठोर न चाहिये।
गुरु-भ्रात ही के गात पै कैसे प्रहारौं सायकै।
यहि लागि तुम सौ मत्र बूझत वीर ! सीस नवायकै।।

इसका उत्तर षड्मुख इस प्रकार देते है--

पटमुख कह्यो 'करो का भाई।
है कर्तव्य अमित दुखदाई।।
ह्वै कै देव चमूचय नायक।
क्यों तिनको नहि बनो सहायक'।।

चकवा-चकई के वियोग का कथन इद्र के मनोभावो के अनूकूल ही हुआ है। प्रकृति के इस स्वच्छद वायुमण्डल मे इद्र ने 'मातु-तिया-सुत-देस' की चिन्ता में न जाने कितनी रातें रो-रोकर बिताई होगी। अत को उसे मरालो की एक जोडी मिल जाती है, जिससे हृदय को कुछ ढाढस बँधता है। उन्ही के द्वारा कालिदास के 'मेघदूत' और नैषध के 'हसदूत' की तरह वह अपना विरह-सदेश अमरावती को भेजता है। 'दैत्यवश-महाकाव्य' के कवि की इस कथा के प्रसग में यह मौलिक कल्पना है। यह अवश्य है कि दैत्यो के आख्यान में इससे किंचित् व्याघात पडता है, पर इस 'हस-सदेश' का सौन्दर्य कथा मे अवातर उपस्थित करते हुए भी पाठक को मोह लेता है। इन्द्र के सदेश मे उसकी वियोग-व्यथा का रुदन नही, अपितु पत्नी के लिए ढाढस और आश्वासन के वचन है। पुरुषत्व की प्रतिष्ठा के लिए यह उचित ही है कि उसकी वियोग-व्यथा शब्दो में व्यक्त न होकर ऐसे कार्यो मे व्यजित हो जो स्त्री के लिए सात्वना-प्रद हो। इन्द्र कहता है—

तेरे ही पुन्नि प्रभावनि सों,
कुसली अबलों सुनो बालम तेरे।
पायो सँदेसो नही तुम्हरो,
नित याही अँदेसनि सौं रहै घेरे।
धीरज धारो हिये मे तिया,
औ निरासहि आवन दीजै न नेरे।
एक न एक दिना सुमुखी !
सुख के कबहूँ दिन आइहै मेरे।
भूलिकै आपु कहूँ जननी—
समुहे जनि लोचन वारि बहैयो।

आवै जबै हमरी सुधि तौ,
सबही विधि सौ तिन्है धीर धरैयौ।
त्यौं मधुरी मधुरी बतियानि,
जयन्त कौ प्यारी सदा बहरैयौ।
मानियौ यामैं अनैसौ नही,
कबहूँ कबौ रम्भहु के घर जैयौ॥

देवताओ की हार हो चुकने पर उनमें बडी बेचैनी फैलती है, और अपने अपने प्राणो की पड जाती है। दैत्यगण अमरावती की लूट की तैयारी करते है। इस अवसर पर इन्द्र-जननी के निम्न कथन से दैत्यो के पक्ष का औचित्य सिद्ध होता है—

'हे सुत! देखौ कहा ह्वै गयो,
अब और कहा करिबे अभिलाख्यौ।
दीन्हो तिन्है सम भाग नही,
फल याते कुनीतिहु कौ तुम चाख्यौ।
घेरी चहूँ दिसि सौं नगरी,
यह देखिकै धीरज जात न राख्यौ॥

इतना ही नही, उसी इन्द्र की माता जिसने अपनी गुरु-पत्नी के साथ व्यभिचार किया था, अपने पुत्र को आश्वासन देती है—

मेरो अँदेसो करौ न कछू,
बलि मोहि बिलोकि बिनीति दिखाइहै॥
त्यौं अबला गुनिकै वर वीर,
पुलोमजा पै नहि हाथ चलाइहै॥
औ नृप-नीति कौ धारि हिये,
न जयन्तहु की दिसि दीठि उठाइहै।
वैर है वाको लला तुम सौं,
हम लोगनि सौ कटु क्यौं बतराइहै।'

जिन दैत्यो ने इन्द्र की पत्नी और पुत्र के साथ अत्यन्त उदारता का सलूक किया, उन्ही की माता के गर्भ का इन्द्र ने छलपूर्वक खण्डन किया। दैत्यपन और देवतापन का यह विरोध देखने योग्य है।

इधर अमरावती पर दैत्यो का अधिकार हो जाता है, उधर इन्द्र प्राण लेकर मानसरोवर में जा छिपता है। इन्द्र की यात्रा में कवि के पार्वतीय-

प्राकृतिक वर्णन अनूठे है। निस्सन्देह कवि को इन वर्णनो की प्रेरणा कालिदास से मिली है, फिर भी हिंदी में ऐसे वर्णन प्राय नहीं मिलते। निम्नलिखित सवैया की अतिम पक्तियो में कैसी अच्छी व्यजना है—

राजमरालनि की अवली,
तट पै जहाँ केलि करै मदमाती।
त्यो चकई चकवा के वियोगनि,
ह्वै रही है विरहानल ताती।
नूपुर की धुनि कौ सुनिकै,
नभ की दिसि हसनि को भ्रम खाती।
धारे सतोष कछू हिय मै,
लखि देव-तिया-गन की अँगराती॥

इधर इन्द्र मानसरोवर में छिपकर दिन यापन करता है, उधर दैत्यो की वृद्धि से पीडित देवगण भगवान् से उद्धार की प्रार्थना करते है और उन्हें सतोष तब होता है जब भगवान् स्वय वामन-रूप में अदिति के गर्भ से जन्म धारण करने का आश्वासन देते है। अदिति के गर्भालस-सौन्दर्य का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक और कालिदास के टक्कर का हुआ है—

सिथिलाई चढै लगी अगनि पै,
सरलौं मुख पकज पै पियराई।
रुचि मृत्तिका खान में होन लगी,
तन छाम मै औरौ बढी दुबराई।
कुच दोउन के मुख पै वर वाम के,
ऐसी लसी कछु स्यामलताई।
अरविन्दनि के मनो कोसनि पै,
भ्रमरावलि की छबि मजुल छाई॥

इसके बाद वामन का जन्म होता है। वामन के शैशव का वर्णन कवि ने सूरदास जैसी स्वाभाविकता के साथ किया है। देव-स्त्रियाँ वामन को अपनी भावी आशाओ का आधार मानती हुई उनको कितना प्यार करती है, इसका अन्दाजा नीचे के दो उदाहरणो से लग सकता है।—

दृग अजन रजन कोऊ करै,
सुठि सीस के बार सँवारै कोऊ।
हरखाय कै गोद मै लेय कोऊ,
कर-कजनि मजु उछारै कोऊ।

मुसकानि पै सुन्दर वा सिसु की,
मनि मानिक सौं मन वारै कोऊ।
लगि जाइ न दीढि कहूँ यहि के,
भरि नैन न वाल निहारै कोऊ॥
पलना पर पारिकै वा सिसु को,
तिय मन्द ही मन्द झुलावै कोऊ।
हलरावनि औ दुलरावनि मैं,
अनुराग के रागनि गावै कोऊ।
पुचकारि कै ताहि हँसाइवे को
चुटकोनि प्रवीन वजावै कोऊ।
पुनि रोवत जानि कै अक मैं लै,
अपनो पय वाम पियावै कोऊ॥

वामन शनै शनै वढता है, तुतली वोली वोलने लगता है, गुरुजनो को हाथ उठाकर प्रणाम करना सीख जाता है, सागोपाग वेदो का अध्ययन करता है, सामगान में विशेष व्युत्पन्न हो जाता है। वामन का सगीत कितना प्रभावोत्पादक है? जड-चेतन पर उसका कैसा असर पडता है? देखिए—

वीनै गहै सुर मुन्दरी त्यो
कुसुमावली टूटै मैंदारनि दाम की।
वावरी कोऊ इती वनि जाय,
नही रहिजाय तिया कोऊ काम की।
कैसेहु मानै मनाये नही,
विसरै सुधिहू वुधि यो सुर-वाम की।
तुग तरगें उठै हिय-सिन्धु मै,
गावन लागै रिचा जवै साम की॥

वाल-सौंदर्य के वर्णन में हमारे कवि की वृत्ति कुछ अधिक रम गई है। इसमें उसे सफलता भी काफी मिली है। वामन ही नही, उपा के वालरूप का उल्लेख करने में भी उसने पर्यवेक्षण और अनभूति की सूक्ष्मता का खासा परिचय दिया है। उपा लडकी है। वह गुरु-गृह पढने को जाती है। पर पढती क्या है—

'एक' 'नौ' 'सात' 'प' 'ना' 'मा' पढै,
कवौ लेखनी कौ उलटी मसि वोरै।

आँगुरी सौं पटिया पै लिखै,
खरिया तेहि माहि मिलाय कै घोरै।
नैकु बुलाये न वोलै कवौ,
कवौ खीझि कै केतो मचावति सोरै।
मूरति लौं गडी रहै,
पै पुकार सुनेही भगै वर जोरै।।

वामन कुछ सयाना होता है। एक दिन अपनी माता को रात भर जागते और रोते देखकर हठ करके उसके दुख का कारण पूछता है। माता पहले तो कुछ सकोच करती है, फिर दैत्यो-द्वारा अमरपुरी की लूट और इन्द्र के पराभव का सारा वृत्तात बतलाती है। वामन बलि के यहाँ जाते है और उनसे दान में तीनो लोक माँग कर उन्हें पाताल भेज देते है। इस प्रकार फिर अमरपुरी में इन्द्रत्व की प्रतिष्ठा हो जाती है।

वाणासुर—जो कि बलि के यज्ञाश्व के रक्षार्थ वाहर गया हुआ था, जब लौटकर आता है तब राजधानी में दैत्यो का निशान भी न पाकर वडा दुखी होता है। वह वहाँ से जाकर 'सोनितपुर' में अपनी राजधानी बनाता है। वही उसके एक पुत्र स्कन्द और एक कन्या उषा का जन्म होता है।

स्कद राजनीति में पारगत होता है और उषा ललित कलाओ में। उषा और अनिरुद्ध की कथा प्रसिद्ध है। इस प्रसग में भी कवि की कला का अच्छा निखार देखने को मिलता है। शृङ्गार का शायद ही ऐसा कोई अनुभव या सचारी छूटा हो जिसका समावेश उषा-अनिरुद्ध के प्रकरण में न हो गया हो। इस प्रकार इस स्थल पर पूर्ण शृङ्गार के दर्शन होते है।

ऊषा कह्यो "सखी ! देखु वृथा,
ये चकोर रहै निसि मै हमै घेरे।
त्यौं मदमाते मलिन्दन वृन्द,
करें मुखमण्डल पै नितै फेरे।
देखौं तडागनि माँहि जबै,
मुदि सम्पुट जात सरोजनि केरे।
कारन याको कहा सजनी,
तुमही कहौं ध्यान न आवत मेरे।
भाजन के जल मै सफरी,
औ लखाइ परै कबहूँ जल जात है।

पै जबै पानि सों चाहौं उठावन,
जानै कहाँ ते कहाँ वै बिलात है।
और कहाँ लौं कहौं सजनी,
दृग कानन सों बढतै मिले जात है।
द्वै दिन ते कछू जानी नही,
मन और के और कहाँ भये जात है।
मन रजन खजन के चटुआ,
अँगना मे कहा दृग खोलै नही।
परे पजर में चकवा चकई,
औ चकोरिनी मजु कलोलै नही।
केहि बैर सों वै सुक सारिका चारु,
बुलायेहू ते मुख खोलै नही।
तिमि गावन में पटु कोयलियाँ,
मन सामुने क्यो मृदु बोलै नही।
अगराग न अग लगावै सखी,
पग जावक नायन लावै नही।
नहिं अजन आँजै अली दृग मै,
बिरिआइन बीरी रचावै नही।
गुहि सोन-जुहीनि के मजुहरा,
गरे मालिनिया पहिरावै नही।
जेहि भौन मे बैठो तहाँ निसि मे,
परिचारिका दीप जरावै नही।

उक्त विवेचन से पाठको को 'दैत्यवश-महाकाव्य' के सुन्दर-सुन्दर स्थलो का कुछ परिचय मिल गया होगा। यह काव्य प्रधानतया वर्णनात्मक है। 'दैत्यवश' के छ राजाओ का एक साथ वर्णन होने के कारण इसमें रसपरिपाक की उतनी गुजायश नही है जितनी एक व्यक्ति के नायकवाले काव्यो में हो सकती है। फिर भी यत्र-तत्र रस के छीटे अत्यन्त रमणीय है। व्रजभापा-काव्यो की प्रस्तावनाओ में लोग अलकारो की गणना कराना, तथा उपमा, उत्प्रेक्षा, व्याजोक्ति, निदर्शना आदि के उदाहरणो पर वाह-वाह करना अपना कर्त्तव्य समझते है। हम यह कार्य पाठको और साहित्य के उन विद्यार्थियो के लिए छोडते है जिन्हें इनका शौक हो या जो परीक्षा की तैयारी कर रहे हो।

हम केवल इतना ही कहेंगे कि अलंकारों के उदाहरण भी इस काव्य में कम न मिलेंगे।

भाषा के ऊपर कुछ अधिक न लिखने का निश्चय हमने पहले ही प्रकट कर दिया है। रीतिकाल के अनेक कवि जब व्रजभाषा के रूप को न निखार पाये तब आज हम उसके द्वारा काव्य-प्रणयन करनेवाले कवियों को क्यों बतायें कि उन्होंने अमुक स्थलों पर व्रजभाषा के परंपरागत प्रयोगों में व्यतिक्रम कर दिया है या उनका अमुक प्रयोग व्रज की बोली के प्रतिकूल है। महाकवि रत्नाकर ने व्रज को काव्य-भाषा के रूप में ढालने का प्रयत्न किया था—ऐसी काव्य-भाषा जिसके लिए व्रज-भूमि की बोली का अनुसरण करने की आवश्यकता नहीं है। यदि इसी कसौटी पर हम 'दैत्यवंश' की भाषा को परखें तो उसे काफी सुघड़, चुस्त और मुहावरेदार पायेंगे।

हमारा विश्वास है कि 'दैत्यवंश-महाकाव्य' पाठकों में लोकप्रियता प्राप्त करेगा और इस काव्य के कवि के साथ चिर तिरस्कृत दैत्यों को भी उनकी सहानुभूति प्राप्त होगी।

—उमेशचन्द्र मिश्र

अनुक्रमणिका

दैत्यवंश महाकाव्य

प्रथम सर्ग

मङ्गलाचरण

घनाक्षरी

(१)

ए जू वरदानी महारानी हंस वाहन की,
लै कै बीन आपु मोद मानिकै बजावो तौ।
चेरो तेरो कवि "हरिनाथ" दैत्यवंस काव्य,
विरचत तामैं सुधा-स्रोत सरसावो तौ।
धुनि, रस, भाव, वृत्ति, भूषन, ललित रीति,
उक्ति, जुक्ति वलित अदूषित बनावो तौ।
पग परि भेंटत तुम्हारे कर कंजनि मैं,
करि कै कृपा की कोर याहि अपनावो तौ॥

(२)

दैत्यवंस सम्भव नरेसनि चरित चारु—
पारावार पार तौ करत बनिहै नहीं।
तव पद-पंकज सुमिरि कै अरम्भि ताहि,
छांडत अधूरो अब जिय मनिहै नहीं।
जौ लौं नहिं हेरिहौ कृपा कै "हरिनाथ" ओर,
मुघर प्रबन्धनि की तान तनिहै नहीं।
याते रसना पै आनि बैठौ पदमासनि जू,
पाय अवलम्ब दास स्रम गनिहै नहीं॥

दैत्यवंश महाकाव्य

प्रथम सर्ग

मङ्गलाचरण

घनाक्षरी

(१)

ए जू वरदानी महारानी हस वाहन की,
लै कै वीन आपु मोद मानिकै बजावो तौ ।
चेरो तेरो कवि "हरिनाथ" दैत्यवस काव्य,
विरचत तामैं सुधा-सोत सरसावो तौ ।
धुनि, रस, भाव, वृत्ति, भूषन, ललित रीति,
उक्ति, जुक्ति वलित अदूषित वनावो तौ ।
पग परि भेटत तुम्हारे कर कजनि मैं,
करि कै कृपा की कोर याहि अपनावो तौ ॥

(२)

दैत्यवस सम्भव नरेसनि चरित चारु—
पारावार पार तौ करत बनिहै नही ।
तव पद-पकज सुमिरि कै अरम्भि ताहि,
छांडत अधूरो अव जिय मनिहै नही ।
जौ लौं नहिं हेरिहौ कृपा कै "हरिनाथ" ओर,
सुघर प्रवन्धनि को तान तनिहै नही ।
याते रसना पै आनि बैठौ पदमासनि जू,
पाय अवलम्ब दास भ्रम गनिहै नही ॥

(३)

दैत्यकुल कुमुद कलाधर कुमारनि को,
कहाँ चारु चरित कहाँ या मति मोरी है।
जानत न काव्य-भेद रुचिर प्रबन्धनि को,
तो हूँ केती कलित कथानि लाय जोरी है।
लैहैं भूल सुजन सुधारि, तो कृपा है भूरि,
जो पै हँसिहैं तो न हँसे हू कछू खोरी है।
भारी व्यवसाय की वृथा है साध वाके हिय,
सम्पति सदन माहिं जाके अति थोरी है॥

(४)

पद अरविन्द सारदा के दोऊ ध्याय मंजु,
सुमिरि महेस निज लेखनी उठाइहौं।
लै कै सार सकल पुरान, काव्य, नाटक को,
आपनी हूँ ओर ते मैं कछुक मिलाइहौं।
या विधि पुरान की कथा को काव्य रूप दै कै,
कविता प्रवीननि को मन बहराइहौं।
याही व्याज देवनि के बंधु दैत्यबंसिनि को,
रुचिर चरित्र चारु प्रमुदित गाइहौं॥

(५)

पालत अखण्ड ब्रह्मचर्य्य बालकाल ही ते,
पूजत पिनाकी के चरन ध्यान धरिकै।
सास्त्र पढि, अरु अस्त्र सस्त्रनि को सीखि सबै,
जाय वन विधिहि सतोषै तप करिकै।
भोगैं राज्य अभय अखण्ड महिमण्डल को,
मानत न सक पाकसासन को डरिकै।
समर प्रचारत न हारत हिये मैं नैकु,
चण्डबाहु विक्रम परेसहूँ सो लरिकै॥

(६)

भागि जात छाँडि रन अगन कुलिसधर,
  मानत सुरासुर समूह जासौं हार है।
नीलमनि - सिखिर - कलेवर - विपुल - वल,
  जाके पग धरत धरा पै परै भार है।
जाके उग्र तप मों प्रसन्न ह्वैकै दैकै वर,
  वार वार हिय पछितात करतार है।
जासु के निधन करिवे के हित आपु जग,
  पुरुष पुरातन धरत अवतार है॥

(७)

सासन करत जे सकल महिमण्डल कौ,
  अम्बुरासि अमित चहूँधा जासु नाके है।
तौहूँ असि-धार-व्रत सेवत धरा के मग,
  कौहूँ भरि नैननि न देखैं दिसि ताके है।
पद्मपत्र पय में लसत जेहि भाँति नृप,
  वैसियै सुहात वनि स्वामि वसुधा के हैं।
गेह में रहत, पै रहत मान जोगिन के,
  हरि पद पकज मरद रस छाके है॥

(८)

तेज मै तरनि, सास्त्रवपारग वृहस्पति लौं,
  नारद लौ ज्ञानी, वल माँहि जे सुरेस हैं।
धीरज में हिमिनग, सान्ति मै प्रसान्त सिंधु,
  छमा में अवनि, अरु दान मै महेस है।
गति मै अनिल, औ अनल सत्रुनासन म,
  पालत पिता लौ प्रजा, हरत कलेस है।
दारिद दुरन्त दुख द्वन्दनि करत दूरि,
  [illegible]

(३)

दैत्यकुल कुमुद कलाधर कुमारनि को,
कहाँ चारु चरित कहाँ या मति मोरी है।
जानत न काव्य-भेद रुचिर प्रबन्धनि की,
तौ हूँ केती कलित कथानि लाय जोरी है।
लैहैं भूल सुजन सुधारि, तौ कृपा है भूरि,
जो पै हँसिहैं तौ न हँसे हू कछू खोरी है।
भारी व्यवसाय की वृथा है साध 'वाके हिय,
सम्पति सदन माहि जाके अति थोरी है॥

(४)

पद अरविन्द सारदा के दोऊ ध्याय मंजु,
सुमिरि महेस निज लेखनी उठाइहौं।
लै कै सार सकल पुरान, काव्य, नाटक को,
आपनी हूँ ओर ते मैं कछुक मिलाइहौं।
या विधि पुरान की कथा को काव्य रूप दै कै,
कविता प्रवीननि को मन बहराइहौं।
याही व्याज देवनि के बन्धु दैत्यबंसिनि को,
रुचिर चरित्र चारु प्रमुदित गाइहौं॥

(५)

पालत अखण्ड ब्रह्मचर्य्य बालकाल ही ते,
पूजत पिनाकी के चरन ध्यान धरिकै।
सास्त्र पढि, अरु अस्त्र सस्त्रनि को सीखि सबै,
जाय वन विधिहि सतोषैं तप करिकै।
भोगैं राज्य अभय अखण्ड महिमण्डल को,
मानत न सक पाकसासन को डरिकै।
समर प्रचारत न हारत हिये मैं नैकु,
चण्डबाहु विक्रम परेसहूँ सौ लरिकै॥

(१२)

ताही वर वस माँहि दिति के गरभसन,
एकै समै जन्म दोऊ पुत्रनि जबै लये ।
मन्द भो प्रबल ताप तपत तपाकर को,
प्रबल प्रभजनहूँ गति मति स्वै गये ।
उठन तरग तुग लागी अम्बुरासि माँहि,
अनल विहाय तेज धूममय ज्वै गये ।
लाग्यो पाकसासन सिंहासन हलन आपु,
चल भे अचल, औ अचल चल ह्वै गये ॥

(१३)

कैधौं वल विक्रम के खम्भ निरमाय जग-
थम्भन के काज विधि आपुही सँवारे हैं ।
कैधौं सौर्य साहस महीधर के सृग युग,
वच्छ पै धरा के अति धीरता सो वारे हैं ।
कैधौं वीर-दर्प-स्वाभिमान-नवमन्दिर के,
कनक कलस ये लखात तेजवारे हैं ।
कैधौं वृद्ध रवि को प्रताप छीन जानि, चतु-
रानन ने भानु जुग महिपै उतारे हैं ॥

(१४)

सैसव विताय मातु-गोद मे अनन्दसन,
कछुक सयाने दितिनन्दन जबै भये ।
सस्त्र अरु सास्त्र को अगाध अम्बु-रासि जौन,
ताके पार दोऊ अनायासहि तबै गये ।
लखि दोऊ वालनि गरुड औ अरुन सम
होत अभिलाख मातु ही तल मत्रै नये ।
दोऊ निज जीवन को सफल बनाइवे को,
मेरु गिरि मग जाय तपन हियै ठये ॥

(९)

तोरि हेमकूटहि न बाँट्यो जग-जाचकनि,
देह धरिबै को तौ धरा मैं कहा सार है।
दान-हेतु सिन्धुनि उलीचि जो न कीन्ह्यो मरु,
तौ तो यहि जीवनै हजार धिरकार है।
जौ पै तिहुलोक स्वामिहू को न नवायो माथ,
मातु के गरभ को वृथा ही भयो भार है।
व्यर्थ ही भये जो कल्पतरु को न भान्यो मान,
ऐसो जेहि बंस के नरेस को विचार है॥

(१०)

खेत समुहाय महाकाल, जमराज हू सौं,
भूलि पग पीछे को कदापि धरिबो नहीं।
जो पै त्रिपुरारिहू प्रचारैं रन अगन में,
तौहू तिनहू की हिय भीति भरिबो नहीं।
आयुध-विहीन प्रति वीर पै समर माहि,
कैसे हू तौ कबहूँ प्रहार करिबो नहीं।
पर धन धाम धरा बाम पै न दीबो दीठि,
निज प्रन करि काहू भाँति टरिबो नहीं॥

(११)

दीन्ह्यौ जु पै विभव हमै है करतार इमि,
तो पै दीनहीनन के दारिद न क्यों दरैं।
सासन सुधारन की योजना करै न काहे,
याचना प्रजा की परिपूरन न क्यो करैं।
रवि ससि पावक करत करतव्य सब,
निज करतव्य सो तौ तव हम क्यो टरैं।
रहत विचारत हिये मे सदा भूप जौन,
सकल कलेस को प्रजानि के न क्यों हरैं॥

(१२)

ताही वर वस माँहि दिति के गरभसन,
एकै समै जन्म दोऊ पुत्रनि जबै लये ।
मन्द भो प्रबल ताप तपत तपाकर कौ,
प्रबल प्रभजनहूँ गति मति ग्वै गये ।
उठन तरग तुग लागी अम्बुरासि माँहि,
अनल विहाय तेज धूममय ज्वै गये ।
लाग्यौ पाकसासन सिंहासन हलन आपु,
चल भे अचल, औ अचल चल ह्वै गये ॥

(१३)

कैधौं बल विक्रम के खम्भ निरमाय जग-
थम्भन के काज विधि आपुही सँवारे हैं ।
कैधौं सौर्य साहस महीधर के सृग युग,
वच्छ पै धरा के अति धीरता सो धारे हैं ।
कैधौं वीर-दर्प-स्वाभिमान-नवमन्दिर के,
कनक कलस ये लखात तेजवारे हैं ।
कैधौं वृद्ध रवि को प्रताप छीन जानि, चतु-
रानन ने भानु जुग महिपै उतारे हैं ॥

(१४)

सैसव बिताय मातु-गोद मे अनन्दसन,
कछुक सयाने दितिनन्दन जबै भये ।
सस्त्र अरु सास्त्र को अगाध अम्बु-रासि जौन,
ताके पार दोऊ अनायासहि तबै गये ।
लखि दोऊ बालनि गरुड औ अग्न सम
होत अभिलाख मातु ही तल सबै नये ।
दोऊ निज जीवन को सफल बनाइबै कौ,
मेरु गिरि सग जाय तपन हियै ठये ॥

(१५)

साधि प्रानायामहि बिताये दिन केते दोऊ,
दीठि रवि दिसि कै अँगूठा पै खरे रहे।
कछुक दिवस कन्द-मूल-फल खाये तिन,
सूख तिन पात पुहमी पै जे परे रहे।
वारि औ बयारि सेयो कितने बरस लगि,
केतिक बरस निराहारहि करे रहे।
जामि गये कीचक, पिपीलिका की बाँबी भई,
तौहूँ ध्यान संकर कौ हिय मे धरे रहे॥

(१६)

घोर तप करत धरा पै दितिनन्दन है,
वाको ताप कोऊ जग माँहि महिहै नही।
भूने जात तापनि त्रिलोकनि विलोकौ किन,
कोऊ देवलोकनि मे चैन लहिहै नही।
याते चलि दीउन निहाल अब कीजै बेस,
तपि तप ऐसो कौन फल चहिहै नही।
जो पै चढि हंस पै चलौगे नहि बेगि नाथ!
रचना रुचिर रावरी या रहिहै नही॥

(१७)

या विधि सुनत दीन बैन देववृन्दनि के,
गौने विधि, दक्ष, भृगु साथहि लिवायकै।
और छिन माहि मेरु मन्दर के सृंग पर,
दोऊ तप करत पहुँचे तहाँ जायकै।
सींचि के कमण्डलु सलिल सो निवारि ताप,
बोले वर बैन दितिनन्दनै सुनायकै।
खोलौ किन लोचन सफल तप तेरो भयौ,
माँगो मन चाह्यौ वरदान सुत आयकै॥

(१८)

सुनि चतुरानन के स्रवन सुधा से वैन,
दितिसुत दोऊ नैन खोले हरखायकै।
परसि विधाता के जुगुलपद-कजनि कौ,
लागे करैं विनती अनन्द अति पायकै।
माँग्यौ वर यहि सचराचर जगत माहि,
मारैं कोऊ रन मैं न मोहि विचलायकै।
"एवमस्तु" कहि हसवाहन मुनिन सग,
ब्रह्मलोक तुरत पहूँचे आपु जायकै॥

(१९)

पाय कै अजेय वर इमि कमलासन सौं,
अतिहि अनन्द दितिनन्दन हिये भये।
न्हाय ब्रह्मसर मै, मुनिन पद वन्दि आपु,
प्रमुदित हिय निज सदन दुओ गये।
सनक सनदन लौं आवत विलोकि तिन्हे,
लाखन लौं मातु अभिलाषनि मनै ठये।
लीन्ह्यौं उठि ललकि लगाय तिन्हे अक माहिँ,
आमिन असीम दोऊ वन्धुनि हितै दये॥

(२०)

मातु कौ अदेस पाय सुक्र को वनाय गुरु,
लागे हेमलोचन मुस सन करैं जवै।
त्यौंही निज भक्ति को प्रवल करिवे के हेतु,
कीन्ह्यो मधि आपु वोलि महिपानुरै तवै।
वासकल, चामर, विडाल, असिलोमा, सुम्भ,
दन्तवक्र आदिन वुलायो तिनहू सवै।
या विधि वढाय निज वल दैत्य-वन्धु दोऊ,
देखै लगे युद्ध कौ है आवत समै कवै॥

(२१)

ज्यों ज्यों नभमण्डल में रोकि रवि मारग कौ,
दैत्यकुल भूप के निसान फहरै लगे।
अरु कानजुर उपजावनी प्रचण्ड धुनि,
करि करि ज्यों ज्यों रन धौंसा घहरै लगे।
कपत है प्रवल प्रभजन मों जैसे तरु,
त्यों त्यों जिय थामि देववृन्द यहरै लगे।
ह्वैहै अमरावती की हाय कौन-सी धौं दसा,
सुमिरि सुरेसहू हिये में हहरै लगे॥

(२२)

दिति मयदानवै बुलाय बनवायो दिव्य-
मन्दिर, छुवत जाके कलस अकास हैं।
रथ टकराय टूटि जैहै यह भीति मानि,
जात देत अरुन न बाजि वाके पास है।
फटिक बिल्लौर की रुचिर जासु भीतिन पैं,
नीलम पुहपराग पुष्प आस पास हैं।
विद्रुम सोपान, खम्भ मरकत ही सो जरे,
लागत सुरेस को अवास जाको दास है॥

(२३)

वाटिका विचित्र यहि भाँति सो बनाई जाहि,
देखि चैत्ररथ को गुमान गरि जात है।
लागे बहु जाति के विटप फल फूल वारे,
जाकी गन्ध सूँधि कै हियो ही हरि जात है।
विकसे बनज बन वगरि वहार वारे,
परिमल पाय भौंर भीर भरि जात है।
त्योंही रितुराज को लुभाइबे के काज मानो,
कूजन कलित खगवृन्द करि जात हैं॥

(२४)

यहि विधि दोउन विचारि कै विवाह योग,
व्याहि मातु सौंप्यो तिन्हैं सासन को भार है।
जेठहि बनायो नृप, अनुजहि युवराज,
राखत हिये मैं बन्धु प्रेम जो अपार है।
बीते यहि भाँति ग्रह सुख मैं बरस केते,
सुत हेम कस्यप के उपज्यो अगार है।
त्यागि बस नीति कौ, विहाय उग्र तेज आप,
बनि गयो भक्तनि हिये को मंजु हार है॥

(२५)

ज्योतिषिन जबहि बुलाय दति पूछ्यौ आप,
भाख्यौ तिन याकी पितु सौ तौ बनिहै नहीं।
निज गुन गौरव औ ज्ञान गरिमा मैं यह,
और की कहा है, गुरु हू कौ गनिहै नहीं।
कोऊ विचलाओ किन याहि धर्म्म मारग तै,
भूलिहू कै काहू की सो बात मनिहै नहीं।
ह्वैहै भक्तराजनि सिरोमनि जदपि यह,
तौ हू यहि राज को अधीस बनिहै नहीं॥

(२६)

ह्वैहै सत्रु पच्छ को समर्थक प्रबल यह,
बालपन ही मैं त्यौं कलेसनि को झेलिहै।
धारिहै पुनीत व्रत सत्य आग्रहै को आपु,
मोरिहै न मुख निज प्राननि पै खेलिहै।
निज मनमानी यह करिहै सदा ही वीर,
बरबस मंत्रिन की सम्मति को ठेलिहै।
बोरो चहै सिन्धु मैं, जरावौ चहै ज्वालनि मैं,
मरिहै न तो हूं, चाहै विष मुख मेलिहै॥

(२१)

ज्यौं ज्यौं नभमण्डल मे रोकि रवि मारग कौ,
दैत्यकुल भूप के निसान फहरै लगे।
अम्‍ कानजुर उपजावनी प्रचण्ड धुनि,
करि करि ज्यौं ज्यौं रन धौंसा घहरै लगे।
कपत है प्रबल प्रभजन सो जैसे तरु,
त्यौं त्यौं जिय थामि देववृन्द थहरै लगे।
ह्वै है अमरावती की हाय कौन-सी धौं दसा,
सुमिरि सुरेसहू हिये मे हहरै लगे॥

(२२)

दिति मयदानवै बुलाय बनवायो दिव्य-
मन्दिर, छुवत जाके कलस अकास है।
रथ टकराय टूटि जैहै यह भीति मानि,
जान देत अरुन न बाजि वाके पास है।
फटिक बिल्लौर की रुचिर जासु भीतिन पै,
नीलम पुहुपराग पुष्प आस पास है।
बिद्रुम सोपान, खम्भ मरकत ही सो जरे,
लागत सुरेस को अवास जाको दास है॥

(२३)

बाटिका विचित्र यहि भाँति सो बनाई जाहि,
देखि चैत्ररथ को गुमान गरि जात है।
लागे बहु जाति के विटप फल फूल वारे,
जाकी गन्ध सूँघि कै हियो ही हरि जात है।
विकसे बनज बन बगरि बहार वारे,
परिमल पाय भौंर भीर भरि जात है।
त्यौंही रितुराज को लुभाइबे के काज मानो,
कूजन कलित खगवृन्द करि जात हैं॥

(३०)

बैठ्यो जाय आपु सुरराज के सिंहासन पै,
आय अवसेष देवपायनि सबै परे।
त्योंही मनिमानिक औ, हीरा मुकतानि मंजु,
नाय सीस भेंट लाय सामुहे तबै धरे।
देखि इमि चरन नमत देववृन्दनि को,
धीरज बँधाय तिन सबनि अभै करे।
तौहूँ उग्र लोचन विलोकि हेमकस्यप को,
रहत विपुल भीति सकल हिये भरे॥

(३१)

उत सुरवृन्द केते छाँडि निज गेहनि को,
पुरुष पुरातन की सरन सबै गये।
त्योंही दैत्यवधुनि के कारज-कलापनि को
दोऊ कर जोरि इमि कहत तबै भये।
जो ये मिलि जैहे दोऊ बन्धु कहूँ एकै साथ,
तौ तौ नाथ जाइहे न काहू भाँति त हये।
याते आपु एक को विदारो तो कृपा कै भूरि,
दूजे को हनै कै ठान जाइहै तबै ठये॥

(३२)

आरत ह्वै विपुल पुकारत सुरन सुनि,
मधुर गिरा सों तिन्हे धीरज धरायकै।
गौने पुरपोतम तुरत तजि लोक, हेम–
लोचनै निपातिबे को हिय ठहरायकै।
नीलमनि सैल सो बराह को विकट वपु,
आये आपु, वाको राज तुरत वनायकै।
वाटिका में कीन्ह्यो त्यौ प्रवेस छद्म वेसकरि,
परिखा प्रबल तुण्डघात सों गिरायकै॥

(२७)

तिनहि विदा कै, लाग्यो कहन कनकनैन,
दीन्ह्यो सबनै जो मोहि राज अधिकार है।
तो पै दिगविजय करन काज बन्धुवर,
रावरे हिये में कहो कौनधों विचार है।
"जैसो होय आयसु तुम्हारो" कहि गौन्यो वीर,
लीन्ह्यो गदा हाथ, पै न कटक अपार है।
लाँघत सरित जात एक ही फलाँग मारि,
चूरन करत जात पथ के पहार है॥

(२८)

बाँकी हाँक जाकी सुनि असनि निपात सम,
रवि-रथ-वाजि मग छाँडि भरकै लगे।
धारत धरा पै पग खसके महीधर हू,
धारा पर पारा पारावार हरकै लगे।
जानि के अकाल ही प्रलै के सब ठान ठये,
सकल सुरासुर के हिय धरकै लगै।
भागे छाँडि आसन को आपु पाकसासन हू,
त्यागि अमरावती अमर सरकै लगे॥

(२९)

यच्छ, रच्छ, किन्नर, विद्याधर, पिसाच, भूत,
गुह्यक उरग प्रेत सामुहे जुरै नही।
त्योही तिहूलोक मै दिखात है न ऐसो वीर,
जाको हिय भूरि-भय-भायनि भरै नही।
गर्भपात ह्वै गये कितेक देवदारनि के,
निज मन धीर कोऊ नैसुक धरै नही।
साहसी न कोऊ है लखात दिवि, आँखिन सो—
अस्रु-माल जाके तरराय कै ढरै नही॥

(३६)

नैकहू न हिय में मकान्यौ दैत्यनन्दन पै,
विफल विलोक्यो जबै कुन्त को प्रहार है।
सैनदै बुलाय निज सैनिकै निकट आपु,
लीन्ह्यो खैंचि कोष तें कठिन करवार है।
छिटकी प्रभा ह्यो प्रलै भानु की मयूखनि लौं,
कीन्ह्यो कोपि कोल के कलेवर पै वार है।
कज्जल महीधर के स्रृंग सम देह पर,
लागत ही कुंठित भई पै तासु धार है॥

(३७)

लाग्यौ दितिनन्दन विचारै निज हीय माहि,
यह बन पसु तौ अमित बलभौन है।
गनत न रंचक प्रहार मम आयुध को,
सामुहे करत मेरे पौन सम गौन है।
घाले केते घाय याके देह पै सकोपि हम,
कैसे हू पिछारी पग धरत न जौन है।
टूट्यौ कुन्त कुंठित भई है तरवार धार,
जानि नहि परत वराह यह कौन है॥

(३८)

अस गुनि सैनिक सों लैकै वज्रसार गदा,
कोपकै महीप तासु सीस पै प्रहारयो है।
निकसत ज्वाल जाल अरुन विलोचन सों,
टूटी गदा जात पै वराह नहि टारयौ है।
कज्जल के कूट सो अचल ताहि आगे लेखि,
दैत्य-कुल-केतु पै न नैकु हिय हारयौ है।
हाँक मारि ठोंकि कै प्रचण्ड ताल ताही समै,
वासो भिरिवै को तबै मन में विचारयो है॥

(३३)

तोरैं लागे तरुन, विदारिकैं गुलाब रौसैं,
कमल कलाप को नसाय छन में दियो।
त्योंही सुवा सरिस सरोवर सलिल कहँ,
पंक जाल आपु रौंदि पायनि मवै कियो।
घुर घुर घोर रव पूरि दिगमण्डल में,
दीन्ह्यौ हहराय बागपालनि हूँ को हियो।
और याही ब्याज मानौ वीर हेमलोचन को,
समर प्रचारि कैं बुलाय उत ही लियो॥

(३४)

वाटिका कौ पालक असुरगन खाय भय,
धाय जाय दैत्यराज-द्वार पै पुकारै है।
महाराज! आयौ एक विकट वराह आजु,
राज-वाटिका को वह निपट उजारै है।
अबलौं न ऐसो कोल देख्यौ है कतौ हू कौहूँ,
कज्जल कुधर के सरिस वपु धारै है।
लै लै प्रान भागे सबै रच्छक तहाँ ते आपु,
आयुध न कोऊ वीर वापै नाथ डारै है॥

(३५)

ताके मुख विकट वराह को सुनत नाम,
धायो हेमलोचन अमित रिसिआयकै।
देख्यौ तहाँ ध्वंस अवशेष परिखा को चहूँ,
धावत वराह अति घोर घुररायकै।
लैकैं कुन्त जबहि सरोप ललकारयो ताहि,
झपटयो तबै ही कोल तुण्डहि उठायकै।
घाल्यो घाव कुन्तल को ज्योंही तासु सीस पर,
खण्ड खण्ड ह्वै के मो धरापै परयौ आयकै॥

(३६)

नैकहू न हिय में सकान्यौ दैत्यनन्दन पै,
विफल विलोक्यो जबै कुन्त को प्रहार है।
सैनदै बुलाय निज सैनिकै निकट आपु,
लीन्ह्यो खैंचि कोष तैं कठिन करवार है।
छिटकी प्रभा त्यो प्रलै भानु की मयूखनि लौं,
कीन्ह्यौ कोपि कोल के कलेवर पै वार है।
कज्जल महीधर के स्रुग सम देह पर,
लागत ही कुंठित भई पै तासु धार है॥

(३७)

लाग्यौ दितिनन्दन विचारै निज हीय माहि,
यह वन पसु तौ अमित बलभौन है।
गनत न रंचक प्रहार मम आयुध को,
सामुहे करत मेरे पौन सम गौन है।
घाले केते घाय याके देह पै सकोपि हम,
कैसे हू पिछारी पग धरत न जौन है।
टूट्यो कुन्त कुंठित भई है तरवार धार,
जानि नहि परत वराह यह कौन है॥

(३८)

अस गुनि सैनिक सौ लैकै वज्रसार गदा,
कोपकै महीप तासु सीस पै प्रहार्‌यौ है।
निकसत ज्वाल जाल अरुन विलोचन सो,
टूटी गदा जात पै वराह नहि टार्‌यौ है।
कज्जल के कूट सो अचल ताहि आगे लेखि,
दैत्य-कुल-केतु पै न नेकु हिय हार्‌यौ है।
हाँक मारि ठोंकि कै प्रचण्ड ताल ताही समै,
वासों भिरिवै को तवै मन मे विचार्‌यौ है॥

(३९)

भाग्यो छल साजि कै वराह महासर दिसि,
तामैं पैठि भूपहि प्रचारयो घुरघुरायकै।
ताको लखि दैत्य-कुल-केतु कछु सोचे विन,
फांदि परयो आपुहू सकोपि अररायकै।
लै गयो नरेसै खैंचि सलिल अगाध जहाँ,
तिनको डुवायो निज बल सो दबायकै।
तुण्ड दन्त घात सो विदारि कै उदर अरु,
लायौ तिन्हें धारि ताहि ऊपर उठायकै॥

(४०)

या विधि निपाति हेमलोचनै मुदित हरि,
देव-काज साजि निज पुरमै तबै गये।
इत नगरी मे नरनाह को निधन भयो,
कैधौं दैत्यकुल के अदित्य ही अथै गये।
विकल विहाल दिति विपुल विलाप कीन्ह्यो,
वहु समुझाय सुक्र धीरज तिन्है दये।
विधिवत नृप को करायो अन्त-ससकार,
प्रहलाद ही सो न विषाद जिनके हिये॥

(४१)

वाके वध सोक को भुलावन के हेतु मानो,
तिय प्रहलाद की सुवन उपजायो है।
रोचन भयो सो दैत्यवस माहि याही लागि,
वाको नाम सबन विरोचन धरायो है।
प्रतिपद चद सो बढत लखि वा सिसु को,
दिति ने अपार निज हीय सुख पायो है।
अरु निज कुल की समुन्नति के हेतु वाम,
लाखनि तो वामै अभिलाखनि लगायो है॥

(४२)

निवसत उत हेम कस्यप अमरपुर,
असगुन होन वाको नितहि तवै लगे।
फरकन वाम नैन, और वाम वाहु वाके,
धरकत हीय मानो कहन सवै लगे।
गवन्यो तुम्हारो, जेठो वन्धु जमराज गेह,
तुमहू वतावौ, उतै आइहौ कवै लगे।
उठत ववडर विचारनि को हीतल मैं,
नैननि सो आपु अस्नुमाल हूँ चुवै लगे॥

(४३)

आयौ निज राज को विलोक्यो सवै सोक साज,
माते लखि दुखित व्यथित हिय मै भयौ।
धीरज वँधाय तिन्हे, भाभिहि प्रवोधि कह्यो,
"विधि को विधान भला टार्यो हू कहूँ गयो।
जानत हौ वन्धुहि सहार्यो हरि नै है आपु,
याही लगि हमहू विचार मन में ठयो।
दीन्ह्यौ अरि सोनित सो अजुलिन जो पै ताहि,
जन्म हेमकस्यप ने जग मै वृथा लयो।"

(४४)

ऐसो जिय ठानि निज दैतनि वुलाय वोल्यो,
"आजु ही ते सत्रु देववृन्दनि को जानो तो।
जारौ हरिभक्तिनि, उजारौ भक्तिमारग को,
विधि के विरोध को सकल ठान ठानो तौ।
जोग जप जज्ञ तप करन न पावे कोऊ,
आपु वाम मार्ग को प्रचार मन आनो तौ।
देखे रहौ हान कष्ट पावै पै प्रजा को नाहि,
इतने निदेस निज सीस वरि मानो तौ॥"

(४५)

यहि विधि उग्र निज नाथ को अदेस सुनि,
आयुध लै दैतगन धावन तबै लगे।
तपत पचागिन करत अथवा जे होम,
अग्निकुण्ड डारिकै जरावन सबै लगे।
ध्यावत परेसहि सरित तट नैन मूँदि,
तिन्हैं वारिधारा मैं बहावन अभै लगे।
पाद को प्रहार कै जगावत मुनिन, हुते—
बैठे जे समाधि को लगाये ही अबै लगे॥

(४६)

हाहाकार तबही सुनत मुनिवृन्दनि को,
आन्यौ प्रहलाद करतव्य निज मन मैं।
मान्यौ नहिं पितु को निदेस, भरकायौ आगि,
ठानि सत्यअग्रहैं प्रबल देवगन मैं।
ह्वै कै राजपुत्र दीन्ह्यौ साथ तपसी जन को,
मोर्यो नहि मुख घोर जम-जातननि मैं।
वैई विस्ववन्दनीय वीर है वसुन्धरा पै,
छाँडै नहि आन जौलौ प्रान रहै तन मैं॥

(४७)

या विधि निरकुस निहारि हरनाकुस को,
पुरुष पुरातन सौं तब न रह्यौ गयो।
धरि नर-केहरि वपुष आपु आये तहाँ,
ताहि ललकारि मल्लयुद्धहि तबै ठयो।
कीन्ह्यौ घोर समर यदपि दैत्य भूपति नै,
नखनि बिदारि कै उदर तेहि को हयो।
देखत ही सबके सहारि कै असुरराज,
देव-मुनि-वृन्दनि को आनन्द हितै दयो॥

(४८)

सुनि इमि निरदै निधन हरनाकुस को,
धाड मारि रोय दिति अवनि तबै परी।
तीय की हिया की गति तुरतहि वद भई,
कोऊ कह्यो राजमातु देखौ तौ अबै मरी।
गुरु को अदेस मानि तवहि विरोचन नै,
विधिवत दोउन की सपदि क्रिया करी।
ह्वै है अब कैसे निरवाह हम लोगनि को,
इमि जिय सक मानि रहत प्रजा डरी॥

(४९)

सुक्र को अदेस पाय मंत्रिन समाज कीन्ह्यो,
आये सव दैत्य तहँ कौतुक वढायकै।
कीन्ह्यो प्रसताव तिन सामुहे सचिव आपु,
राज के प्रवन्व को उपाय ठहरायकै।
दारुन समै मै जव होत है कपट युद्ध,
ह्वै है भूल निवल महीपति विनायकै।
याते प्रहलादहि न दीजै राज काहू भाँति,
थापियै विरोचनै सिहासन पै आयकै॥

(५०)

सुनत सचिव प्रस्ताव कह्यो गुरु मतो हमारो।
सव मिलि कै अव राज विरोचन कहँ वैठारो।
असिलोमा, रुद्रवक्र, आदि जे वीर हमारे।
रहिहैं राज प्रवन्ध सकल ये आपु सम्हारे।
अरु सकल मन्त्रिगन सजग ह्वै करिहै निज निज काज को।
वस याही मै अव है भलो दैत्यवंस के राज को।

द्वितीय सर्ग

रोला

(१)

इमि गुरु सों लहि राज भये नरपाल विरोचन,
पै नहि नव नृप नीति सके अवलम्बि सकोचन ।
जदपि रहत प्रहलाद राज काजनि ते न्यारे,
राखत तिनको तदपि हीय गौरव नृप धारे ॥

(२)

यह सुनि सुरगुरु सहित आपु सुरपति तँह आये,
स्वागत कियो नरेस अधिक उर आनँद छाये ।
अमित विनय दरसाय कह्यो नृप "अति भल कीन्ह्यो,
जो यहि औसर आय आपु दरसन मोहि दीन्ह्यो ।।

(३)

कृपा चाहिए गुरुन अवसि वालनि पै ऐसी,
भलेहि भूल सो होय जदपि कोउ वात अनैसी ।"
कह सुरेस "हम तुमहि आपनो पौत्रहि मानत,
पूर्व वैर को भाव नाहि रचक हिय आनत ।।

(४)

धरा धाम धन हेतु कहूँ ह्वै जाति लराई,
वालन पै नहि जात तासु की कसरि चुकाई ।
एक ववा के वस माँहि उपजे हम दोऊ,
परे कछु मन भेद नाहि दूजे हम कोऊ ।।

(५)

याते अब सुत समुझि बूझि ऐसो कछु कीजै,
वम बैर को लाभ सत्रु कहँ लैन न दीजै।
जानै पसु वपु धारि जुगुल बन्धुन किन मारे,
कहत तिन्हें पुर लोग 'ईस' हिय बिनहि बिचारे ॥

(६)

जो पै काहू भाँति सोध उनको कहुँ पैये,
बधु वधन को तिन्हहि मारि बदलो चुकैये ।
बैरिन बस विरोध जानि काहू बिधि पायो,
धरि पसु रूप अनूप बधु के प्रान नसायो ॥

(७)

याको कारन तात एक मेरे मन आवत,
पै जिय होत सकोच रहम ताको बतरावत ।
बिपुल-काय बरबीर सैन मै रहत तुमारे,
हैं दस्युन के मीत बनत राउर रखवारे ॥

(८)

लहि अवसर अनुकूल तिनहि करि आपु अगारी,
सिंहासन सों तुमहि देहि कहुँ ये न उतारी ।
दस्युन सों करि सन्धि न कहुँ निज सक्ति बढावै,
अरु यहि बिधि दल बाँधि न कहुँ तुम पै चढि आवै ॥

(९)

याते सुत कछु सोचि समुझि अरु मानि हमारी,
असुर कुचालिन देहु सैन ते आपु निकारी ।
त्रिदिवस अपनो गात सरत अथवा पकि आवत,
बुधजन करत न बार तुरत ताकहँ कटवावत ॥

(१०)

हम सों देवन लेहु प्रबल निज सैन बनावहु,
करहु अकटक राज हिये चिन्ता जनि लावहु ।
ये हैं तुम्हरे बधु प्रान तुम्हरे हित दैहैं,
रखिहैं कुल को मान काम गाढे पर ऐहैं ।।

(११)

दन्तवक्र, असिलोमादिक, जे असुर तुम्हारे,
अनाचार अति करत प्रजनि सब देत उजारे ।
तिन सब केतिक बार जबै निज दूत पठाये,
तब सुत अपनो मानि तुम्हैं समुझावन आये ।।

(१२)

तिनके प्रतिनिधि आय बार ही बार पुकारत,
महाराज ये असुर हमैं मारे अब डारत ।
नित ही माँगत भेंट कहाँ एतो धन पावैं,
कहाँ जायँ तजि देस जहाँ निज प्रान बचावैं ।।

(१३)

कहियो सुक्रहु सों न तात या मैं है कारन,
निज सुत कहैं वह चहत राज आसन बैठारन ।
अरु तारक सो चहत देवयानी को ब्याहन,
या लगि अनहित लखत रहत कीन्हें हिय पाहन ।।"

(१४)

कह गुरु "यह प्रस्ताव सुक्र निसपति सो कीन्ह्यौ,
पै अनुचित सम्बन्ध जानि तिन उतर न दीन्ह्यौ ।
तब सों कछु खिसियाय अहित देवनि को चाहत,
वैर बँधावन काज सदा हिय रहत उमाहत ।।"

(१५)

इमि कैतव नय निपुन सुरप नृप कहँ समुझायौ,
लहि उत्तर अनुकूल लौटि अमरावति आयौ।
मानि ववा के बैन समुझि निज कुल आचारन,
लगे प्रजा कल्यान हेतु नृप मंत्र विचारन ॥

(१६)

कियौ सुरप विस्वास कह्यौ गुरु सौं कछु नाहीं,
पै सब वचन प्रकास कियौ अपने पितु पाहीं।
सुनि हँसि कह प्रह्लाद "करिय जनि तात! अँदेसौ,
तेहि को सकत बिगारि जासु रच्छक है केसौ ॥

(१७)

राजपाट सब त्यागि लगे हरि चरनन माहीं,
तौ हूँ माया मोह देत कैसेहुँ कल नाही।
तुम तौ हौ सब जोग्य हिताहित आपु विचारौ,
समुझि बूझि सब वात कार्यक्रम कौ निरधारौ॥"

(१८)

इमि लखि जनक विराग, हितू सुरपति कहँ जान्यौ,
तिनके मत अनुसार काज करिबोई ठान्यौ।
कबहुँ आय जो प्रजा असुर प्रतिकूल पुकारत,
तासु पच्छ नृप लेत ताहि अपमानि निकारत ॥

(१९)

मुदित देत वरवीर प्रान रनखेतन माहीं,
पै अनुचित अपमान सकत अपनो सहि नाहीं।
स्वामिभक्ति पै सोचि, नृपति पद सीस नवाये,
कियो न नेकु विरोध त्यागि पद वाहर आये ॥

(२०)

यहि विधि सुम्भ, निसुम्भ, जम्भ, चामर, अरु सम्वर,
हयग्रीव, मय, नेमि, सकुसिर, उत्कल, डम्वर।
मधुकैटभ, दल मिले, कोउ माहिप महँ जाई,
पै नहि विप्लव कीन्ह कठिन करवाल उठाई ॥

(२१)

या विधि तिनहि निकारि भूप सुरलोगनि राख्यौ,
अरु सुरसेन-नियुक्त करन हित हिय अभिलाख्यौ।
इमि सब असुर समूह जबै नृप को रुख जान्यौ,
ह्वै निरास वलि पास आय यहि भाँति वखान्यौ ॥

(२२)

"महाराज! जे रहे आजु लौं सत्रु तुम्हारे,
लिये लेत ते हाय सकल अधिकार हमारे।
लैहैं वलहि वढाय उग्र निज रूप दिखैहैं,
हैं सुरपति के मीत अवसि धोखो मिलि दैहैं ॥"

(२३)

तव वलि तिनहि प्रवोधि आपु गुरु मन्दिर आयो,
अरु पद पकज परसि सकल कहि हाल सुनायो।
सो सुनि कछुक विचारि सुक्र इमि गिरा उचारी,
"दैत्यवस को होन चहत अनहित अव भारी ॥

(२४)

है वस एक उपाय, भूप वन को मग लैहो,
राजपाट को भार सौंपि तुम्हरे कर देहो।
अवहूँ विगरयौ नाहि ईस जो होइ सहाई,
करि नृप नय अवलम्ब काज सब लेबु वनाई ॥"

(२५)

तौ लगि सैनिक सुभट आय गुरुद्वार पुकारे,
"महाराज! हम लोग आजु सब जात निकारे।"
तिन्ह सबहिन समुझाय मुक्र बलि कहँ सँग लीन्ह्यौ,
अरु अतिसै मन माखि गमन नृप मन्दिर कीन्ह्यौ॥

(२६)

गुरु आवन गृह सुनत विरोचन अति सकुचाने,
पै सब त्यागि दुराव चरन परि के सनमाने।
बहुरि कमलकर जोरि कनक-कस्यप-कुल-केतू,
पूछ्यो गुरु सो "नाथ! आजु आयो केहि हेतू?

(२७)

जब सेवक के सदन चरन गुरु के चलि आवत,
सकल अमंगल मूल दरत दुख दुसह नसावत।
पै लहि जो कछु नाथ? रावरो आयसु होई,
सुमन माल सम सीस धारि करिहै हम सोई॥"

(२८)

कह गुर "सुत! तुम हाय कहा कछु ध्यान न दीन्ह्यौ,
असुर समूह निकारि राज निर्बल करि लीन्ह्यौ।
अरु सुर सैनिक राखि आपनो काज बिगार्‍यौ,
लै अपने ही हाय परसु निज पायनि मार्‍यौ॥

(२९)

अबहूँ बिगर्‍यौ नाहिं पूत को ब्याह रचावौ,
अरु दै दै उपहार सुरनि निज धाम पठावौ।
बहुरि निमंत्रन भेजि अखिल असुरनि बुलवावौ,
माँगौ तिन सौं छमा, आपने बलहि दृढ़ावौ॥

(३०)

सुनि इमि गुरु मुख बैन भूप पायनि सिर डार्‌यौ,
अरु मन अमित गलानि मानि आपुहि धिरकार्‌यौ।
बहुरि जुगुल कर जोरि कह्यौ "हौ रह्यौ भुलान्यौ,
निज हित अनहित हाय नाथ! अबलौ नहिं जान्यौ॥"

(३१)

लखि तेहि अमित विनीत हरषि गुरु आसिष दीन्ह्यो,
अरु बलि कौ लै साथ गमन निज भवनहि कीन्ह्यौ।
होतहि प्रात महीप विज्ञ दैवज्ञ बुलाये,
बलि विवाह हित मुदित लगन तिन सौं सुधवाये॥

(३२)

सचिवनि बहुरि निदेसि निमन्त्रन सबन पठायो,
सुरपति, असुरनि, जिन्हैं प्रथम अपमानि छुटायो।
जथासमै तिन आय विरोचन नृपहि जुहारे,
नय परिवर्तन निरखि आपु सुरपति हिय हारे॥

(३३)

हिम भूधर के अंक रही नगरी एक प्यारी,
बलिविध्या तहँ रही भूप की राजकुमारी।
तेहि सँग नृप निज सुतहि ब्याहि अति आनँद पाई,
लौट्यौ पुनि निज राज सकल अभिलाष पुराई॥

(३४)

पुनि सब साजि समाज राज बलिराजहि दीन्ह्यौ,
अरु जग सौं मुख मोरि आपु दर्भासन लीन्ह्यौ।
दियो अमित उपहार प्रथम जिन सुरन बुलायौ,
अरु अमरावति तिनहि सबनि हरि साथ पठायौ॥

(३५)

पुनि असुरनि सनमानि तिन्हें निज निज पद राख्यौ,
मानि आपनी भूल अमित मृदु बैननि भाख्यौ।
सब विधि तिनहि सँतोषि त्यागि जग के जंजालहिं,
अवरावन नृप लगे आपु निसदिन ससिभालहि ॥

(३६)

इत नृप बनि बलिराज राज कौ बलहि दृढ़ायौ,
प्रजनि दियो सन्तोष कोष की आय बढ़ायौ।
बहुरि जनक सौं जानि सकल सुरपति मठताई,
कबहुँ न उनसौं कियो आपु जिय खोलि मिताई ॥

(३७)

प्रजानुरंजन ओर ध्यान नरनायक दीन्ह्यौ,
नित नव सुघर सुधार आपु सासन महँ कीन्ह्यौ।
खोले गुरुकुल अमित, सबनि विद्या पढ़वाई,
सैनिक सिच्छा काज व्यवस्था सकल कराई ॥

(३८)

लरत कुन्त सौं वीर, कतहुँ कोउ परसु प्रहारत,
गदायुद्ध कोउ सिखत, खड्ग के हाथ निकारत।
मुगदर, पट्टिस लिये कोउ प्रतिबल ललकारत,
गज, रथ, बाजिन बैठि कोउ निज धनु टकारत ॥

(३९)

कियो स्वास्थ्य-रक्षा हित भूपनि अमित उपाई,
दीन्ह्यौ नगरनि माहिं औषधालय खुलवाई।
ज्वर सङ्क्रामक रोग कबहुँ नाहिन बढ़ि आवत,
पय-पोषित-सिसु होन मृत्यु की ग्रास न पावत ॥

(५)

अरु मानि लीजै सुरप उन सो जो कहूँ लरि हारिहै,
तौ तिनहि प्रथम दवाय तुमको अवसि समर प्रचारिहै।
संतति हमारी मूढता पै तबहि नृप पछिताइहै,
निज अतुल बल को पतन लखि अँसुवा अमित बरसाइहै॥"

(६)

इमि भाषि ससि भौ मौन, सुरगुरु समुद बलि दिसि देखिकै,
कह "सधि कीजै कलह तजि, गति समय की अवरेखिकै।
है संगठन सहयोग में ही सक्ति यह गुनि लीजिए,
स्वीकार याते सत्रु को प्रस्ताव भूपति कीजिए॥"

(७)

पुनि लखि विरोचन ओर सुरगुरु कछुक मृदु मुसकायकै,
"कह सधि देहु कराय, अब निज सुवन को समुझायकै।
है उभय कुल को कुसल यामै औ यहै नृप-नीति है,
जो करै हठ तेहि को दबावत यह बडेन की रीति है॥

(८)

बिधि बिस्नु हर हू लखहु किन यहि बंस के प्रतिकूल हैं,
उन्नति अपार विलोकि उनके हिये बेधत सूल हैं।
बिसवासि पुनि छल साजि हरि ने दैत्य बधुनि को हयो,
है सुरप के हिय दाह, याको अजहुँ नहि बदलो लयो॥

(९)

तुम दुऔ मिलि वचक विधि यह पाठ देहु पढाइ तौ,
यहि भाँति कोऊ तपधनहि बरदेन कौ नहि जाइ तौ।
इत ब्रह्म लोक उजारिकै पुनि बिस्नु सौ पूँछौ सही,
वैकुण्ठ अधिपति देव की अब नीति रीति यहै रही ?

(१०)

इमि प्रवल अरिन दवाय पहले भूप वदलो लीजिए,
वर ब्रह्मलोक विकुण्ठ को मिलि दोउ सासन कीजिए।
हरखाय भांग धतूर को कैलास पै नित राजहीं,
हेरम्ब, षटमुख गौरिहू को ज्ञान कछु उनको नहीं ॥

(११)

विधि विस्नु के इमि पतन को जव जानि वै पैहैं कहीं,
तौ ह्वै अकेले रावरो कछु अहित करि सकिहैं नहीं।
तव तिनहि विवस वनाय मनमाने नितहि वर लीजियो,
यहि विधि अखिल ब्रह्माड पै दोउ मुदित सासन कीजियो ॥"

(१२)

इमि सुनत सुर गुरु के वचन कछु सुक्र मृदु मुसकायकै,
अरु कहन लागे वैन दैत्य नरेस को समुझायकै।
"नृप ! सुनिय सत उपदेस इनको और फेरि विचारिए,
फल अफल याको सोचि पीछे कार्यक्रम निरधारिए ॥

(१३)

ये चहत विधि हरि सम्भु सौं तव घोर वैर वँधायकै,
यहि भाँति दैत्यनि वंस को अवसेप अस नसायकै।
पुनि जोरि तिनसौं सधि ये ब्रह्माड में निज जस भरे,
अरु कुटिल नीति सिखाय तुम कहँ सक्र को कारज करे ॥

(१४)

जव हयो हरि हठि दैत्यवधुनि, करन अस्तुति ये गये,
नहि लाज आई सत्रु के कर जोरि ये ठाढ़े भये।
नृप वाल प्रहलादहि कछुका ये कपट चाल पढ़ायकै,
अरु आज लौं निज नीति के वल तुमहि रहे दवायकै ॥

(५)

अरु मानि लीजै सुरप उन सो जो कहूँ लरि हारिहैं,
तौ तिनहि प्रथम दवाय तुमको अवसि समर प्रचारिहैं।
सतति हमारी मूढता पै तवहि नृप पछिताइहैं,
निज अतुल वल को पतन लखि अँसुवा अमित वरसाइहैं॥"

(६)

इमि भाषि ससि भौ मौन, सुरगुरु समुद बलि दिसि देखिकै,
कह "सधि कीजै कलह तजि, गति समय की अवरेखिकै।
है सगठन सहयोग में ही सक्ति यह गुनि लीजिए,
स्वीकार याते सत्रु को प्रस्ताव भूपति कीजिए॥"

(७)

पुनि लखि विरोचन ओर सुरगुरु कछुक मृदु मुसकायकै,
"कह मधि देहु कराय, अब निज सुवन को समुझायकै।
है उभय कुल को कुसल यामै औ यहै नृप-नीति है,
जो करै हठ तेहि को दबावत यह बडेन की रीति है॥

(८)

विधि विस्नु हर हू लखहु किन यहि बस के प्रतिकूल है,
उन्नति अपार विलोकि उनके हिये वेधत सूल है।
विसवासि पुनि छल साजि हरि ने दैत्य वधुनि को हयो,
है सुरप के हिय दाह, याको अजहुँ नहि वदलो लयो॥

(९)

तुम दुऔ मिलि वचक विधि यह पाठ देहु पढाइ तौ,
यहि भाँति कोऊ तपधनहि वरदेन को नहि जाइ तौ।
इत ब्रह्म लोक उजारिकै पुनि विस्नु सों पूँछौ सही,
वैकुण्ठ अधिपति देव की अव नीति रीति यहै रही ?

(१०)

इमि प्रवल अरिन दवाय पहले भूप व्रदलो लीजिए,
वर ब्रह्मलोक विकुण्ठ को मिलि दोउ सासन कीजिए।
हरखाय भाँग धतूर को कैलास पै नित राजहीं,
हेरम्ब, षटमुख गौरिहू को ज्ञान कछु उनको नहीं ॥

(११)

विधि विस्नु के इमि पतन को जव जानि वै पैहैं कहीं,
तौ ह्वै अकेले रावरो कछु अहित करि सकिहैं नहीं।
तव तिनहि विवस वनाय मनमाने नितहि वर लीजियो,
यहि विधि अखिल ब्रह्माड पै दोउ मुदित सासन कीजियो ॥"

(१२)

इमि सुनत सुर गुरु के वचन कछु सुक्र मृदु मुसकायकै,
अरु कहन लागे वैन दैत्य नरेस को समुझायकै।
"नृप ! सुनिय मत उपदेस इनको और फेरि विचारिए,
फल अफल याको सोचि पीछे कार्यक्रम निरधारिए ॥

(१३)

ये चहत विधि हरि सम्भु सों तव घोर वैर वँधायकै,
यहि भाँति दैत्यनि वस को अवसेप अस नसायकै।
पुनि जोरि तिनसों सधि ये ब्रह्माड में निज जस भरे,
अरु कुटिल नीति सिखाय तुम कहँ सक्र को कारज करे ॥

(१४)

जव हयो हरि हठि दैत्यवधुनि, करन अस्तुति ये गये,
नहिं लाज आई सम्भु के कर जोरि ये ठाढे भये।
नृप वाल प्रह्लादहि कछुकाल ये कपट चाट पटायकै,
अरु आज लौं निज नीति केवल तुमहिं रहे दवायकै ॥

(१५)

जब ते भये बलिराज नायक हहरि हिय इनको गयो,
ये बढत प्रति-पद चन्द्र-सम हा दैव ! यह कैसो गयो।
सुर बनत देवनि दास, दैत्यज होत जात स्वतंत्र हैं,
यहि लागि तुमरे नाम हित इमि देत भूपति मंत्र हैं॥

(१६)

आचार इनको सुनहु नृप ! मखि जज्ञ कीन्ह सजायकै,
न्यौत्यौ बृहस्पति को लियो पुनि तासु तियहि ,छिनायकै।
तेहि करी निज घरिनी, थके आचार्य विनय सुनायकै,
नहिं नेकु मारे आपु हारे सकल देव मनायकै॥

(१७)

ते चले हम कहँ आजु भूपति देन कौ उपदेस हैं,
पै निज कुटिल करतूति पै ये लजत लखहु न लेस है।
एक तीय कौ यह तुच्छ झगरौ निपटि नहिं पायौ जहाँ,
तौ राजनैतिक विषय मैं ये न्याय कौ करिहैं कहाँ॥"

(१८)

सुनि सुक्र के वर बैन बलि नृप तिनहि सीस नवाइकै,
अरु कहन लाग्यो वचन निज गुरुवरहि इमि समुझाइकै।
"अभिलाष करि आये इतै, इनको निरास न कीजिए,
प्रस्ताव के अरथान को स्वीकार ही करि लीजिए॥

(१९)

हे नाथ ! याने नित्य कौ कुल कलह तौ मिटि जाइहै,
अरु रहत रन हित सजौ सैनहुँ चैन सौ कछु पाइहै।
फिरि बधु मिलिहै बधुसौ बिनरायकै अरिभाव को,
ह्वै विमल मानस, राखिहैं नहिं कतहुँ कोउ दुराव कौ॥"

(२०)

इमि बैन मुनि बलिराज के जलराज गुरु रुख पायकै,
यों कहन लागे दैत्यनृप सों वचन मृदु मुसकायकै ।
"है रहत कमला सिन्धु में अरु रत्न रासि सबै यहीं,
पै मथि अगाध समुद्र को कोउ तेहि निकारै है नहीं ॥

(२१)

यातें हमारी मानि अब नृप सिन्धु को मथि डारिए,
गहि बाँह तेहि पितु गेह सो सह रत्न रामि निकारिए ।
पुनि लाभ को सम भाग हम सब बाँटिहैं सुख पायकै,
अरु मेलकै रहिहै सदा कुल कलह को बिसरायकै ॥"

(२२)

मुनि वरुन को प्रस्ताव कछुक विचारि मत्र दृढ़ायकै,
स्वीकार कीन्ह्यो ताहि बलि हिय अमित मोद मढ़ायकै ।
जलनाथ ससि अरु अपर सुरगन हर्ष अति पावत भये,
अरु नाय बलि पद भाल सब मन मुदित सुरपुर को गये ॥

(२३)

सुरराज पूछ्यो तबहि गुरु सों "काज करि आये वहाँ,"
तिन कह्यो "सब बनि परी सुक्र अनर्थ पै कीन्ह्यो महाँ ।
तब सिन्धु मन्थन हेतु साध्यो बहुरि बलिहि रुमायकै,
बहु रत्न कमला आदि को तेहि अमित लोभ दिखायकै ॥

(२४)

यह सुक्र जी लौं जियत तो लौं चलन चाल न पाइहै,
छल अवसि कुटिल कुमन को सब भेद नरहि बताइहै ।
नहि लोभ लेसहु करन यह तो हाथ कैसे आइहै,
अरु दैत्यनृप सों कही कैसो विपल बैर बढ़ाइहै ॥

(२५)

यह मुत्र जो पै दैत्य नृप सों कतहु बैर बढ़ावहीं,
तौ छनक में गहि चाप, कै दै साप तिनहिं नसावहीं।
इमि साप-हत-बल-दैत्य-गन-कौ जबहिं हम लखि पावहीं,
सजि सैन आयुध धारि तिनहिं समूल भूप नसावहीं ॥"

(२६)

निसिराज बोल्यो "अब सबै मिलि आपु मत्र दृढ़ाइए,
यहि सिन्धु-मथन माहिं इनको अमित हानि महाइए।
बढ़ि विपुल बल सों बरुन तिनको धार माहिं बहावहीं,
कै वह्नि वाडव निकरि इनको जारि छार बनावहीं ॥"

(२७)

उत गुरुहिं दैत्य-नरेस आपु मनाय आयसु पाइकै,
निज सैन लैकै सिन्धु के तट रच्यो सिविर बनाइकै।
इति सुरप लै दिकपालगन अरु नागराज बुलायकै,
तेहि सजग कीन्ह्यौ निज कुटिल प्रस्ताव को समुझायकै ॥

(२८)

तब विविधि औषधि लेन दोऊ गहन कानन कौं गये,
तँह दैत्य गन सविशेष भोजन विषम भुजगन के भये।
सुर किते नाहर रूप धरि पुनि तिनहिं औचक ही हये,
पै अमित हानि उठाय कै तिन लाय सब औषधि दये।

(२९)

सुर असुरगन मिलि तबहिं मथर अचल लावन को गये,
पचि मरे पै नहिं अचल डोल्यौ दैत्य बल कुंठित भये।
लखि तबहिं सबहिं निरास श्रीहरि वाम बाहु लगायकै,
गहि ताहि बिनहिं प्रयास डारचौ सिन्धु के मधि लायकै ॥

(३०)

सुर ।कहत कमला रहत यामैं सुधा को आवास है,
वहु रत्न मनि मानिक तथा मुकता जलधि के पास है।
जो वहुत वढि वतरात वाकी वात कौ न प्रमानिए,
कछु छीहरो रीतो तथा अति तुच्छ वाको जानिए ॥

(३१)

यह करत नाद अपार पै गम्भीरता छोरैं नहीं,
वहु उठत झंझावात पै सुख सान्ति सौं मोरैं नहीं।
लै सलिल खारो सपदि घन सुस्वादु ताहि वनावहीं,
अरु लोक के कल्यान-हित तेहि अवनि पै वरसावहीं ॥

(३२)

है सीत याको नीर, यद्यपि धरत यह वडवागि है,
हरि नीद यामैं लेत पै यह रहत निसि दिन जागि है।
नहि घटत ग्रीषम माहि अरु है वढत पावस मैं नहीं,
सच कहत सज्जन कवहुँ निज मरजाद को छोरैं नहीं ॥

(३३)

यह दूरि करत पियास रवि की, पोत कौ स्वागत करैं,
हरपाय तिनके भारहू को वच्छ पै अपने धरैं।
नायक किती सरिता तियनि को मानहू सवको करैं,
नहि होन देत निरास काहूहि सकल दुख तिनके हरैं ॥

(३४)

नृप चक्रवर्ति समान वहु विस्तार याको राज है,
अरु रहन पाय स्वराज्य यामैं सकल जन्तु समाज है।
अधिकार के हित युद्ध यामैं है नहीं कतहूँ ठनै,
सच कहत कवहुँ स्वराज्य मैं नहि जात है विप्लव सुनै ॥

(३५)

वह अनाधार अगाध अम्बुधि में लग्यो बूडन जबै,
धरि प्रबल कच्छप रूप हरि निज पीठ पै राख्यो तबै।
पुनि करि चतुर्भुज वपुष वापै आपु बैठे जायकै,
यहि भाँति दीन्ह्यो शून्य नभ में रुचिर खम्भ बनायकै॥

(३६)

अभिलाष हरि को देखि तब हरि वासुकीहि बुलायकै,
कह "रज्जु तुम बनि जाहु सब मिलि मथैं सागर आयकै।"
सिर धारि सुरप अदेस मंदर माहि सो लिपटत भयो,
अमरेस सुरयुत आय वाको प्रथम ही आनन गह्यो॥

(३७)

यहि चाल को समझे बिना सब दैत्य अमित रिसायकै,
अहि सीस गहिबे काज तिनसों लगे झगरन आयकै।
"ह्वै विमल वंस विभूति निज कुल गौरवहि रखैहैं नहीं,
यहि नाग को अधभाग काहू भाँति हू छ्वैहैं नहीं॥"

(३८)

लखि सफल अपनी चाल तिनकी बुद्धि पै मुसकायकै,
सुर त्यागि वासुकि-सिर लगे सब पुच्छ की दिसि जायकै।
हरि प्रथम बल करि खैंचि निज दिसि बहुरि बलि खैंचत भये,
इमि पाँच बार फिराय मंदर दोउ निज सिबिरनि गये॥

(३९)

सुर असुर दोउ मिलि मथन लागे अमित रोष बढ़ायकै,
सुनि करन जुर कारन रवहि जलजन्तु चले परायकै।
लहि विकट भूधर की चपेटनि भगत ससि घबरायकै,
उछरत तिमिंगिल नक्र कोहूँ अमित चोटनि खायकै॥

(४०)

उठि विपुल तुंग तरंग नापन गगन कहँ मानो चली,
कै परसि हरि पदकंज को यह करत मृदु विनती भली।
है सम्पदा हू आपदा याको कठिन रच्छन महाँ,
परि खलन के पाले कहो अब याहि लै जावैं कहाँ ॥

(४१)

निज काज साधन हेतु खलगन गनत कष्ट न और को,
नहिं आपदा पै द्रवत पर को देत तिनहिं न ठौर को।
ये लै अमित धन रासि, वैभव विपुल निज विसतार हीं,
पै दीनजन दुख दरन के हित आँसु एक न डारहीं ॥

(४२)

कामत वस्तु निज बुद्धि को जिन मंत्र यह तिनको दियो,
पर-हानि के हित लागि अपनो ही अमित अनहित कियो।
जो खनत औरन के निधन हित कूप मग में जायकै,
ह्वै सावधान तथापि तेहो गिरत वामें आयकै ॥

(४३)

इत सुमिरि सुरप अदेस वासुकि अमित रोष बढ़ायकै,
विष ज्वाल लाग्यो तजन दैतन दिसि हिये अनखायकै।
जाते अनेकन दैत्यगन जरि छार तेहि ठौरहि भये,
अरु सके जे विष झेलि ते कारे कलूटे ह्वै गये ॥

(४४)

उत बाड़वागि प्रकोपि तावन तिनहिं तापन सों लगी,
श्रम हरन सीतल बात इत हिम किरनि निकरनि सों जगी।
उत तपन अग्नि-मरीचि-माली ज्वाल जनु बरसायकै,
इत करत छाया जान घन गन सुमन जूह गिरायकै ॥

(४५)

सहि अमित कष्टन दैत्यगन नहि वासुकी आनन तज्यो,
अरु धीरता को देखि तिनकी हीय निज सुरगन लज्यो।
रहि सिविरि में, पढि मंत्र आहुति अग्नि में डारत रहे,
यहि भाँति तिनकी विघ्न बाधा सुक्र सब टारत रहे॥

(४६)

उत विपुल भूधर की चपेटनि भयौ इत कौतुक नयो,
बहु तप्त तैल समान सागर को सलिल सब ह्वै गयो।
मरि गये बहु जल-जन्तु जिनके सब बहन पय पै लगे,
पुनि जरन लाग ज्वाल जनु अम्बोधि के ऊपर जगे॥

(४७)

सुर दैत्य मुरछित परे मंदर खम्भ लौ ठाढ्यो रह्यो,
लखि विषम हालाहलहि तब हरि बिहँसि इमि हर सौ कह्यो।
यह आपुको है भाग याते याहि प्रथम पचाइए,
सब जरे ज्वालनि जात इनको वेगि नाथ ! बचाइये॥

(४८)

सुनि वचन हरि के सम्भु हालाहलहि निज कर मैं लियो,
अरु सुमिरि प्रभु पदकंज वाको पान हर्षित हिय कियो।
"जै जैति जैति कृपालु संकर" असुर देवनि मिलि कह्यो,
पुनि सपदि सागर मथन हित तिन आय वासुकि को गह्यो॥

(४९)

पुनि कछु चपेटनि खाय ससि घबराय हीय डरायकै,
निज प्रान रच्छन काज जलपै आपु बैठ्यो आयकै।
लखि कह्यो संकर याहि हम निज सीस हरखि बसायहैं,
यहि भाँति सौ विष ज्वाल मालनि चैन तौ कछु पायहैं॥

(५०)

पुनि कल्पतरु, गज, बाजि, रम्भा, धेनु, धनु, ताते कढे,
सुरनाथ तिनकहँ लेन हित आनन्द सों आगे बढे।
हरि लियो कौस्तुभ, सङ्ख, वारुनि कढन सागर सों लगी,
तब ताहि लैबे काज कछु अभिलाष दैतनि उर जगी॥

(५१)

पै बरजि तिन कहँ कहत बलि हम लेइहैं याको नहीं,
पर तियनि पै कहुँ दैत्य-बस-नरेस दीठि न डारहीं।
लै वारुनी वर कलस देवनि ओर बैठी जायकै,
अति रूप रासि निहारि ताको रहे सुर मुसकायकै॥

(५२)

तब कढी कमला जासु के वर रूप को अवरेखिकै,
सुर असुर दोऊ चकित से रहि गये इकटक लेखिकै।
कह "सिन्धु देव अदेवगन महँ याहि जो मन भाइहै,
प्रातहि स्वयवर माँहि तेहि जयमाल या पहिराइहै"॥

(५३)

लै वारुनी अरु इन्दिरा को गयो सो निज गेह को,
पुनि मथन लागे सिन्धु दोउ बिसराय के निज देह को।
कहुँ विफल श्रम नहि होत है यह बात हीय दृढायकै,
अरु अधिक फल की आस पै विसवास अमित बढायकै॥

(५४)

पानि लै पियूष घट तब आपु धन्वन्तरि कढे,
सुर ताहि लैबे काज प्रमुदित जबहि वाकी दिसि बढे।
तब करकि कै बलि कह्यो 'वाही ठौर पै ठाढे रहौ,
जनि लखौ याकी ओर तुम पथ आपने गृह को गहौ॥

(५५)

यो वलि आयसु पाय पियूष कौ,
दैत्य धनन्तरि सों घट छीन्यो ।
ठाढे रहे पुतरी सम देव,
न साहस कोऊ विरोध कौ कीन्ह्यौ ।
देखि कै ताकौ प्रमोद भरे,
हरषाय कै सैनिक के कर दीन्ह्यौ
औ कछु वीरन के सँग भूपति,
आपने गेह को मारग लीन्ह्यौ ॥

चतुर्थ सर्ग

सवैया

(१)

या निसि सिन्धु निदेस सों एक,
प्रवाल को दीप तहाँ कढ़ि आयो ।
हेम को हाल विसाल-दिवार,
जराय जर्यो अतिसै मन भायो ।
एक ही दर्पन की छति जासु,
गहै प्रतिबिंब महा छवि छायो ।
ता मधि मंचनि की अवली,
गजदन्तमयी अति साज सजायो ॥

(२)

दीठि जहाँ लगि जाति चली,
तहँ सुन्दर छाय रही हरियारी ।
वेलिन के तने चारु वितान
खिली सुमनावलि है अति प्यारी ।
रौंसें गुलाबनि की तिनी चारु
रही चहुँ ओर सुगंधि बगारी ।
त्यों ही सरोजनि के मकरन्द सों,
गौन लौं मोहि रह्यो नर नारी ॥

(३)

मञ्जरी मंडित चारु रसाल की,
डारनि पै चढी क्वैलिया गावत।
सीतल मन्द सुगन्ध समीर,
जहाँ मन को स्रम दूरि भगावत।
त्यो खगवृन्द को मंजु अलाप,
सुधारस स्रौननि मे मनौ नावत।
हेम कुरंग चहूँ दिसि घूमि,
उद्यान की सोभा अपार बढावत॥

(४)

आजु है सिन्धुसुता को स्वयंवर,
औ सुरवृन्दनि हू की अवाई।
या लगि मानौ महा मुद मानि,
दियो प्रकृती सुषमा बगराई।
ता समै मंचनि की अवलीनि पै,
ऐसी अनूप छटा कछु छाई।
मानो सुधाधर नें हरखाय,
दई बसुधा पै सुधा बरसाई॥

(५)

जानि स्वयंवर को समै आपु,
मयंक लै सेवक को गन आयो।
स्वागत ही के लिए सबके,
तँह मंजुल पाँवडे लै बिछवायो।
पान सुगंधि औ एला लवंग,
गुलाब को जीवन हू मँगवायो।
औ तिनको सुरवृन्दनि के,
सतकारनि को करिबो समुझायो॥

(६)

तौ लगि आवन लागे विमान,
तहाँ असुरासुरवृन्दनि लै लै ।
त्यौ परिचारकहू कर जोरि,
लगे तिन्हे मजु बतावन गैलै ।
स्वागत द्वार पै ठाढो ससी,
गहि के कर मच लौ जात लै छैलै ।
पाँव धरा पै जहाँई धरै,
तहाँ चाँदनी चारु, चहूँ दिसि फैलै ॥

(७)

सम्भु विधाता, तथा हरि, सक्र,
जलेस, धनाधिप, नैरित, आये ।
वायुसखा, जमराज, औ पौन,
वृहस्पति, मगल, बुद्ध सुहाये ।
त्यौ सनि सुक्र, तथा वलि, वासुकी,
बान, कुमार महा छवि छाये ।
किन्नर, रच्छ, विद्याधर, यच्छ,
स्वयवर देखन के हित आये ॥

(८)

है जग मे किते दीन औ हीन,
पै जच्छ रहे निज चित्त दुराये ।
रूप मनोहरता मे विद्यावर,
छाँह हू वाकी छुवै नहि पाये ।
गधर्व हू मे नहीं स्वर गन्ति,
यहै गुनि कै हिय माहि लजाये ।
सिन्धु-सुता के स्वयवर माहि,
न आनन को ते दिखावन आये ॥

(९)

वान को देखत ही सुरराज ने,
ताहि लियो निज अक विठारी।
ऑगुरी सो तिन दै कै सँकेत,
कुमारहि लीन्ह्यो तहाँ सनकारी।
कै परिहास कह्यो मुस्काय,
यहै अब तौ मति होत हमारी।
सिन्धु-सुता सौ कहो इनके, गरे,
क्यो जयमाल न देत है डारी।।

(१०)

आय पिता ढिग वैठे दोऊ,
सुरनाथ के वैननि ह्री सो लजाने।
दीन्ह्यो लाइची पान सबै,
औ सुगधिन सीचि हिये हरखाने।
त्यौही सुरासुरवृन्दनि के,
ससि ने सतकार किये मनमाने।
तौ लगि रत्न जरी सिविका,
तहाँ लावत वाहक आपु लखाने।।

(११)

धारि दियो सिविका तिन लाय कै,
तासौं कढी जलरासि दुलारी।
भूषन वेस बनाय भले,
तहाँ आय गई सबै देवकुमारी।
लीन्हे मयकमुखी कर माल,
मराल की चाल लजाय पधारी।
लागी करावन देवन को,
परिचै वर वीन कौ धारनवारी।।

(१२)

ठाढ़ी लजात तहाँ कमला,
न स्वयंवर भौन सकी पगुधारी।
भूषन औ सुषमा छबिभार,
जाति है मानौ दबी सुकुमारी।
मानस को धन हंस कुमारि को,
लै चलै, तैसें चला सखी सारी।
लोचन देवन के उरझे मग,
कैसे धरे पग सिन्धु दुलारी॥

(१३)

देवन की दिसि सारदा देखि,
गँभीर गिरा सन बैन उचारी।
"सिन्धुसुता यह आपु लजात,
न या दिसि दीठि लगाय निहारी।
त्यों हरि औ चतुरानन सम्भु की,
धीरज की जो छोरावन वारी।
धारे प्रसून नराचनि काम,
सबै मुद-मंगल साजै तुम्हारी॥"

(१४)

या कहि सो कमला को लिवाय कै,
बासुकी के सम्मुहे भई ठाढ़ी।
त्यों सुमिरे तिनके गुन ग्राम,
सचीनि पै आय परी अति गाढ़ी।
रोम चढ़े, तनु कम्प जग्यो
अरु भीतिहु सिन्धुसुता हिय बाढ़ी।
या बिधि नाहिं बिहाल लखै
तबैं सारदा यों बनिता सुर काढ़ी॥

(१५)

"ये सबै नागन के अधिराज हैं,
सेय महेस को धन्य कहाये।
धारत हैं सिर दिव्य मनीन,
सबै विधि संकर के मन भाये।
कंकन होत कबौं करके,
गुन मानि पिनाक पै जात चढाये।
औ इनही सौं कबौ कसि कै,
सिर के जटा जूट हैं जात बँधाये॥

(१६)

गौरि अलिंगन सौं कुच कुंकुम,
लागि परयो पट सो अरुनारो।
रातो भयो तेहि के परसे,
उपवीत लौ सम्भु गरे यहि धारो।
गौर सरीर है पै यहि को,
लखि जाहि लजात कपूर औ पारो।
सो यह आय स्वयंवर मे,
अभिलाषी भयो सुनो आजु तुम्हारो॥

(१७)

सम्भु के सीस सौं बाल मयंक,
पियूष को एक ही जीभ निकारी।
दूसरी त्यौ रसना को बढाय,
गहै अधरा को सुधा जहँ धारी।
एक ही साथ दुहून को चाखि कै,
कामै बरयो विधि स्वाद सँभारी।
सो झगरो निपटाइबे को,
बस वासुकी एकै भयो अधिकारी॥

(१८)

जानत हैं सिगरे जग में,
विष होत भुजंगम दाँत में धारो ।
पै अधराधर को छत कै,
सो बिगारि सकै कछुहू न तुम्हारो ।
लै कै पियूष को साज सबै,
चतुरानन ने निज हाथ सँवारो ।
या लगि हीय में नैसुक सकै,
करो जनि मानि कै बैन हमारो ॥"

(१९)

पै लहि सिन्धु-सुता को सँकेत,
लै भारती ताहि चली कछु आगे ।
लाखनि लों अभिलाखनि धारि,
मनोभव ताहि निहारन लागे ।
देख्यो जबै कमला दृग फेरि कै,
भाग मनोज महीप के जागे ।
ताको विशेष लखे अनुरागहि,
सारदा बैन कहे रस पागे ॥

(२०)

"है यह इन्द्र को आयुध मंजु,
जो लावनिता को अनूप अगार है ।
त्यों हरि संकर औ विधि के,
वृत को यह आपु डिगावनहार है ।
धारै प्रसून नराचनि पै,
जग कौन नहैं यहि वीर की मार है ।
कीजिए याहि कृतारथ तो,
रति सी वर भामिनी को भरतार है ॥"

(२१)

"ये हैं कुबेर महेस के बन्धु,
औ देवनि कोष के हैं अधिकारी ।
किन्नर यच्छ विद्याधर गन्धर्व,
बीन लै कीरति गैहैं तुम्हारी ।
कीजै जथारुचि भोगनि कों,
औ बिभूषिए पुष्पविमान सवारी ।
कंठ में याके मयंकमुखी,
अब दीजै स्वयंवर माल कौ डारी ।।"

(२२)

देखि मयंक-स्वसा कौ विराग,
तिन्हें हुतवाहन के ढिग लाई ।
बोली लखौ 'तिहुँकाल तिहूँपुर,
है इनही की सदा प्रभुताई ।
खात सबै कछु पै इनके बिनु
है कहूँ जज्ञ न जात रचाई ।
लोक पुनीत बनावन में,
इनकी नहीं कोऊ करै समताई ।।"

(२३)

"लोक प्रचेता कहैं इनको,
दिसि वारुनी के ये भये अधिकारी ।
त्यों ही तुम्हारे पिता इनके,
ह्वै अधीन बड़ाई लही इती भारी ।
पास है पास तऊ भ्रम होत,
उन्हैं लखि कै कबरीहि तुम्हारी ।
है ही जलेस भरोसे सदा,
बसुधा कौ सोहाग औ सम्पति सारी ।।"

(२४)

"मारुतदेव हि देखिए तौ,
इमि की गति है तिहुँ लोकनि माहीं।
जापै न कोर कृपा की करैं,
छिनहू वह प्रान सकै धरि नाहीं।
हैं हनुमान से याके सपूत,
हुतासन सौं वर मित्र लखाहीं।
औ उनचास सगोती लसैं,
न कृतारथ क्यों करिए इन काहीं।।"

(२५)

"ये जमराज हैं, दच्छिन औ,
दिसि कारा-जगागनि के अधिकारी।
न्याय करैं सिगरे जग को,
अरु जातना पापिन देत हैं भारी।
कै बडभागी इन्हैं कमला,
सिगरे जग की बलि दीजिए नारी।
औ इनकी लहुरी भगिनी,
जमुना सों कवौं करियौ जनि रारी।।"

(२६)

पै जमराज को रूप निहारि,
कछु कमला मन में सकुचानी।
त्यों तिय के हिय की बतियानि,
लई सबै सारदा नै अनुमानी।
लै गई ताहि सिवाय तहाँ
जहाँ मञ्च पै राजि रह्यो बलि दानी।
जो निज सामुहैं सिन्धुसुता सन,
या बिधि बोलि उठी वर बानी।।

(२७)

"ये हरनाकुस-ब्रस के रत्न,
अदेवनि के अधिराज कहाये ।
धारैं महाबल ये महाबाहु,
अबै इन सागर कौ मथवाये ।
दान मैं त्यो सुर-पादप कौ,
अरु रूप मैं कोटि मनोज लजाये ।
ये अपने सुत साथ इतै,
तुमरो हूँ स्वयवर देखन आये ॥"

(२८)

सिन्धुजा के मन आई नही,
बलि हू तेहि ओर न नेकु निहारो ।
सो गुनि भारती ने हिय माहि,
अचभित ह्वै कछू आप विचारो ।
लै गई ताहि तहाँ जहँ बैठो,
गिरीनि कौ पख बिदारनवारो ।
औ तेहि की दिसि देखि कछू,
मुसकाय गिरा इमि बैन उचारो ॥

(२९)

"कस्यप-वस की हैं ये विभूति,
किये सत जज्ञ औ इन्द्र कहाये ।
देवनि के है यही अधिराज,
रहैं अमरावती मै छवि छाये ।
त्यों रन मै लरि कै किती वार,
अदेवनि की चमू चै विचलाये ।
हैं ये कलानि के प्रेमी बडे,
औ किती प्रमदानि के भाग जगाये ॥

(३०)

देखियौ नृत्य के भेदनि कौ,
अरु तान तरंगनि कौ रस लीजियौ।
औ कबौ नन्दन कानन मैं,
इनके सँग मंजु बिहारनि कीजियौ।
ठानियौ रारि पुलोमजा सौं जनि,
औ अदिती कौं सँतोषहि दीजियौ।
पाय सुरेस सौ नायकै आपु,
सबै सुख जीवन के उत कीजियौ।।"

(३१)

आगे बढ़ी जबै सिन्धु-सुता,
चलि बानी गई जहाँ बैठे पिनाकी।
रोकि तिन्हैं औ कछू मुसकाय कै,
भारती भौंहैं भ्रमाय कै बाँकी।
बोली "सुनौ कमला! जग मैं,
समता न करै कोऊ दान मैं याकी।
औ गुन औगुन याके दुऔ,
मति मेरी बिचारि बिचारि कै थाकी।।

(३२)

जाचकै देत हैं बिस्व बिभौ,
अपने तन पै गज-खाल सँवारत।
जोगिन मैं सब सो हैं बड़े,
पै तियाहि सदा अरधंग मैं धारत।
लीन्हें त्रिसूल रहैं कर मैं,
तऊ दासनि के भ्रम सूलनि टारत।
जारि ही देत सबै जग को,
जबै तीजो त्रिलोचन लोचनि निहारत।।

(३३)

भाँग धतूरनि खात कितौ,
पै अभै हैं हलाहल आपु पचैकै।
हैं ही दिगम्बर, वाहन बैल,
मसान में डोलैं परेतनि लैकै ।
जोरिहैं दिव्य दुकूल जबै,
गज-खाल सौं गाँठि सखीगन दैकै।
तौ परिहास करैंगी सबै,
अबला अनमेल विवाह चितैकै ।।"

(३४)

व्यालनि की लखिकैं फुसकार,
कछू कमला निज हीय डरानी।
कीन्हो प्रनाम झुकाय सिरै,
चतुरानन के ढिग सो नियरानी ।
गावन कौ तिनके गनगाथ कौ,
कीन्हो सकोच कछू मन बानी ।
पै अपनो करतव्य विचारिकै,
बोली तिया सौं गिरा रससानी ।।

(३५)

"तीनहू लोक के ये करता,
अरु चारहू वेद बनावनवारे।
दाढी भई सन-सी सिगरी,
सिर पै कहूँ केस न दीसत कारे।
नारद सौं इनके हैं सपूत,
तिहूँपुर ज्ञान सिखावनहारे।
प्रेम की पास मैं बाँधन कौ,
तुम्हैं बूढे बबा इत हैं पगु धारे ।।

(३६)

मेलिकै कंठ मयूक की माल,
इन्है तुम आजु कृतारथ कीजियो।
औसर मंगल गावन काज,
हमैं निज वृद्ध विवाह मैं दीजियो।
त्योंही विनोद विहारनिको,
इन सों मिलिकै सिगरो रस लीजियो।
पै गृह जीवन के सुख की,
तपसी घर में रहि साध न कीजियो॥

(३७)

गुन-गौरव-गाथा सखी इनकी,
हम पै कहू भाँति न जाति कही।
गई बीति हमैं बरसैं कितनी,
इनके नहि तर्क को पार लही।
यह कैतव-नीति के पंडित हैं,
समता इनकी जग आप यही।
पचिहारे किते तपसी तपकै,
वर देत हैं पै फल देत नहीं॥"

(३८)

वन्दि तिन्हें मन मैं मनुचायकै,
सिन्धुजा आगे कछू पगु धारी।
कोटि मनोज लजावत जे,
पुरुषोत्तम पै निज दीठि को डारी।
ठाढ़ी जकी-सी छिनैक रही,
कर्तव्यहू को न सकी निरधारी।
या विधि ताकी दसा अवलोकि,
कह्यो इमि बीन सो धारनवारी॥

(३९)

"आगे चलौ सखी देखें बरें,
परिचै इनकौ हम कैसे करावें।
मो अबला की कहा गति है,
सहसानन हू कहि पार न पावै।
जानें कहाँ इनको गुन-गौरव,
बेद हू नेति ही नेति बतावै।
बदत बूढे बबा इनके पग,
आपु महेसहु ध्यान लगावै॥"

(४०)

सिन्धुजा को हरि में अनुराग,
लग्यो त्यों अदेवनि हीय जरावन।
बार न लागी तिन्हें तनिकौ,
पल में हरि कौ वपु लागे बनावन।
औ यहि भाँति सबै मिलिकै,
कमला की तबै मति लागे भ्रमावन।
ता समै भोरी न जानि सकी,
चहियै जयमाल किन्हें पहिरावन॥

(४१)

देखि तहाँ हरि बैठे अनेक,
लगे मुसकान कछूक त्रिलोचन।
त्यौ भ्रम में परि सिन्धु-सुता,
पहिराय सकी नहिं माल सकोचन।
वाकी लखे दयनीय दसाहि,
लगे अपने मन में बलि सोचन।
जानि रहस्य सँकेतहि सौं,
नृप आपु निवारि दियो तिन पोचन॥

(४२)

देखि अचानक और की ओर,
सँकोचि मयूक की माल सँवारी।
त्यों दुओ कम्पित हाथ उठाय,
दियो पुरुषोत्तम के गर डारी।
लाजन बोलि सकी न कछू,
कृस देह भई पै रोमंचित नारी।
औ सखियानि कै संग समोद,
विनोद-भरी निज गेह सिधारी॥

(४३)

मेघनि के अवरोधनि सों छुटि,
चन्द्र सों चन्द्रिका ज्यों मिलि आई।
त्यों वर देवनि की सरिता,
जलरासि सों आपु मिली उमगाई।
यों हरि सिन्धुसुता को सँजोग,
रहे सब देव अनन्द सों गाई।
पै कछू अन्य अदेवनि के उर,
कुन्त समान गड्यो वह जाई॥

(४४)

वा निसि सागर-नन्दिनी सों,
हरि जू को भयो तहँ मंजु बिवाह।
जाय सुरासुर दोउ अनन्द सों,
लीन्यो सबै मिलि लोचन लाह।
व्यापि रह्यो तिहु लोक के वासिन-
हीनन माहिं अमन्द उछाह।
सिन्धु ने कीन्हे किते सनकारनि
जो उपहार दियो सब चाह॥

(४५)

सिन्धु-सुता कौ विबाह समापिकै,
देवन मन्त्रना कीन्ह्यौं विचारी।
"लै गये कुम्भ सुधा कौ अदेव,
बनी सिगरी विधि बात विगारी।
एक तौ ऐसे हुते बलधाम,
पियूष पिये अब डारिहैं मारी।
जा दिन लैहै हिये महँ ठानि,
तबै अमरावती दैहै उजारी॥"

(४६)

सक्र कह्यौ "तुम व्यर्थ डरात हौ,
काम सबै यह काम सजैहैं।
जानत हैं कितने छलछदनि,
जाय तहाँ निज जाल बिछैहै।
ल्याइहैं फाँसि तिन्हें निहचै,
तुमरे कर सौं जु पै पानहि पैहैं।
आयुध मेरो यहै है अमोघ,
प्रहार न याकौ वृथा कहूँ जैहै॥"

(४७)

जा समै हे बलि सागर के गृह,
काम तबै तियरूप बनायो।
कचन कौ घट नीर भरो,
मुख मूँदो, लिये बलि सैन मे आयो।
कैतिक नेह-नही बनियानि सौ,
सैनिक कौ बिसवास दृढायो।
चेटक-सौ पुनि बुद्धि भ्रमाय,
पियूष कौ कूम्भ उठाय लै आयो॥

(४८)

या विधि सों घट ल्यायो मनोभव,
भेद न याको कछू बलि जान्यो ।
बुद्धि सराहि कै वाकी सबै मिलि,
देवनि नैं अतिसैं सनमान्यो ।
नेह को नातो निबाहन काज,
अदेवनि हू को बुलाइवो ठान्यो ।
आय जुरे तहँ ते सिगरे,
जबही दियो औसर आय तुलान्यो ॥

(४९)

सोचन लागे सबै मिलिकै सुर,
या समै कौनसी चाल चलैयै ।
जाते पियें सबै देव पियूष,
इन्हें पुनि वारुनी प्याय छकैयै ।
जो पै करैं लगें ये झगरो,
तब तो इनसों कहूँ पार न पैयै ।
या ते विमोहन को इनको,
अब ही पुरुषोत्तम के गृह जैयै ॥

(५०)

देवन की विनती सुनि कान,
तिया-वपु केशव आपु बनायो ।
सोरहो साजि सिंगारनि को,
औ विभूषन अंगनि अंग सजायो ।
हेम के कुम्भ लिये कर में दोऊ,
बाल मराल की चाल लजायो ।
दीन्हों कटाच्छ अनायसँ भौंहनि,
दैतनि को हिय दौरि चलायो ॥

(५१)

कचन बेलि-सी या नवला,
दबी जात मनौ कुच कुम्भ के भारन।
त्यो सुखमा, पट, भूषन, दीठि कौ,
बोझ अपार बहै केहि कारन।
जानत हौ यहि मैन महीप,
जराय कै आपु कियो चहै छारन।
या लगि सो हम लोगनि सौं
मिलिकै निज प्राननि चाहै उधारन॥

(५२)

पन्नगी, मोर, मृगा, गज, केहरि,
मग रहैं अरि-भाव बिसारत।
पकज, चन्द्र, चकोर, अमा,
औ मराल, मृनाल, मनौ हिय हारत।
बिम्ब अनार न खात कबौं सुक,
क्वैलिया अम्बनि काटि न डारत।
चम्पक औ अलि, राहु, ससी,
अरु तारहु द्वैक पहारनि धारत॥

(५३)

पीरी, हरी, अरु स्यामल नील,
मनी अवदात तथा अरुनारी।
नूपुर मैं जरिकै मनौ सक्र-
सरासन दीन्ह्यौ तिया पग डारी।
कैधौ नवग्रह आय कहैं,
तुव पायन पै है गये वलिहारी।
प्याय पियूष हमैं अपने कर,
कीजिए आजु कृतारथ प्यारी॥

(५४)

छीन मृनाल को तन्तु हो है,
गनितज्ञ की रेख की है किधौं साखी ।
कै तिहुलोकनि की सुखमा कहुँ,
कंचन किंकिनी बाँधिके राखी ।
या तिय की कटि की उपमा,
परब्रह्म लौं जात नहीं कछु भाखी ।
याको सरूप बिलोकन काज,
दई बिधि क्यों न अनेकन आँखी ॥

(५५)

जा चरन की सुखमा लखि पंकज,
कीच में जाय गड़े हिय हारे ।
खंजन हू उड़ि भागे अकास,
दुरे बन जाय कुरंग बिचारे ।
मीन गये छिपि नीर अगाध,
दिखावें नहीं मुख लाज के मारे ।
सो हमें प्यावत चाखनी आजु,
उदै निहचै भये भाग हमारे ॥

(५६)

जासु सों आनन की दुति हेरि,
कुमोदनी चन्द न सोच लजाहीं ।
लाजनि लागि सरोजनि-वृन्द,
सबो निसि माहि नहीं बिगसाहीं ।
सो गति सों मद-मोचिनी बाम,
मिली यह भागनि सों हम काहीं ।
लोचन सारँग न्यौं लिखे,
पै यह लखियो बखिनन सों नाहीं ॥

(५७)

नीलम सों जरे हेम के कंकन,
　　धारि कै सोभा बढी कर केरी ।
ज्यौं अलि सम्पुट-बन्द-सरोज-
　　मृनाल की नाल लियो मिलि घेरी ।
औ बहु रंग की वामै परी,
　　चुरियाँ खनकै सो कहैं मनो टेरी ।
त्यागि गयो महि कौ सुर रूम्ब,
　　वदानिता या कर कंज की हेरी ॥

(५८)

या विधि दैतनि की बनियाँ सुनि,
　　घूँघुट खोलि कछू तिय दीन्ह्यो ।
औ तिनको तनहू मन वाम,
　　सबै बिधिसो अपने वस कीन्ह्यो ।
बैठन कौ तिन्हें पाँति बनाय,
　　कछू मुसकाय कै आयसु दीन्ह्यो ।
वैठे अदेव जबै चुप साधि,
　　तबै तिय ने करमै घट लीन्ह्यो ॥

(५९)

वारुनी और पियूष के कुम्भनि,
　　ल्याय दियो तिन सामुहे धारी ।
हीरक औ, पुखराज की मंजुल,
　　द्वैक कटोरी अनूप निकारी ।
प्यावन लागी सुरासुर को,
　　सुधा वारुनी कौ तिन मैं तिय ढारी ।
पै तेहि के रस के बस ह्वै,
　　रहे पीवत ऐसी गई मति मारी ॥

(६०)

वारुनी को तिय हीरा कटोरी में,
ढारि अदेवनि के ढिग ल्यावत।
त्योंही सुधा भरि कै पुखराज-
कटोरिया में सुरवृन्द छकावत।
या बिधि चालनि को तिय की,
नहिं ता मर्म कोऊ तहाँ लखि पावत।
देन संतोष रही सबको,
इमि छद्मतिया सुरकाज सजावत॥

(६१)

जानि कछु देवनि सों कुटिल कराल चाल,
बैठ्यो राहु सुरबपु धारि तिन्ह ओर जाय।
लैकै अमी पियन लग्यो सो जबै त्यों ही ससि-
दीन्ह्यो सुरराज सों सैननि सों समुझाय।
लीन्ह्यो तिन कुलिस प्रहारचो कोपि ताके सिर,
दीन्ह्यो पर मारन ही नाहिं धर सों उड़ाय।
अमिय प्रभावसों न मर्‌यो, रुण्ड मुण्ड दोऊ,
राहु केतु ह्वैकै बनि निसिचर पुकार्‌यो जाय॥

पंचम सर्ग

चौपाई

(१)

दोहा—दैत्य सिबिर महँ प्रात ही, जुरी सभा हरषाय ।
राहु देह जुग खड सव, देख्यौ अचरज पाय ।।

चलि दिसि निरखि रुड कर जोरी ।
भाख्यौ मुड गिरा दुख वोरी ।।
"प्रभुहि अछत अस हाल हमारा ।
कृत अपराधहि कौन उबारा ।।
आये नाथ सिबिर निज जबही ।
भयो दिचित्र चरित इक तवही ।।
भयो अमिय सब सुरा हमारो ।
सुरन पियूष पान करि डारो ।।
जब मैं सुन्यौ अमिय तिन पायो ।
देव रूप धरि तुरत सिधायो ।।
बैठ्यौ तहँ पगति मधि जाई ।
हेमकुम्भ गहि तिय इक आई ।।
प्याय सवन मम निकट पधारी ।
दियो अमिय अजुलि महँ डारो ।।
हौं मुख माहि जबहि तेहि डारी ।
दीन्ह्यौं ससि सुरेम सनकारी ।।

(२)

दोहा—लहि मयक सकेन तिन, लीन्यौ वज्र उठाय ।
पल मारत मम सीस कौ, धड तैं दियो उडाय ।।

कछुक पियूष गयौ तन माही ।
या तें नाथ मर्‍यौ मैं नाही ।।

व्यापी वज्र त्रिया तन वाँकी ।
पर्यो रह्यो तेहि ठौर इकाकी ॥
मुर्च्छा विगत जबहि सुधि आई ।
तब प्रभु सिविर चल्यो दुख पाई ॥
लीजिय नाथ कुम्भ सो देखी ।
अवसि भयो कछु कपट विसेखी ॥"
सो सुनि नृप घट तुरत मँगायो ।
देखि हिये अति अचरज आयो ॥
पूछ्यो नृप तब नैन तरेरी ।
भाख्यो दैत्य कथा मग केरी ॥
कैसे मिली तिया तहँ आई ।
कैसे तिन मति दियो भ्रमाई ॥
कैसे कुम्भ वदलि तिन लीन्ह्यो ।
गह्यो पियूष वारुनी दीन्ह्यो ॥

(३)

दोहा—सुनत तासु मुख वचन इमि, जान्यो सकल हवाल ।
देस काल वल गुनि तवहि, लौटयो दैत्य भुवाल ॥
अमरपुरी उत देव पधारे ।
इतै असुर निज देस सिधारे ॥
भोरहि वलि निज सभा बुलाई ।
आये सकल दैत्य समुदाई ॥
तबहि सचिव नरपति रुख पाई ।
कही सवनि इमि गिरा सुनाई ॥
"सव मिलि कै जलरासि मथायो ।
किंयो अमित स्रम कष्ट उठायो ॥
देवन कपट जाल इमि कीन्ह्यो ।
नहि सम भाग रतन महँ दीन्ह्यो ॥

लीन्ह्यौ रमा, धेनु, तरु, रम्भा ।
तऊ कीन्ह अन्याय अरम्भा ॥
मनि, गज, बाजि, आदि बहुतेरी ।
सम्पति अखिल अम्बुनिधि केरी ॥
छल करि लीन्ह्यौ सकल छिनाई ।
अमिय लियो मति दियो भुराई ॥

(४)

दोहा——याते सब मिलि आपनो, कहौ सुतत्र विचार ।
या विधि देवनि सों दवे, नही कतहुँ निस्तार ॥"
वोल्यौ सचिव जुगुल कर जोरी ।
"छमिय नाथ कछु अविनय मोरी ॥
पै अव लवन खाय प्रभु केरो ।
भाखे विना अधर्म घनेरो ॥
पच्छिराज दनुजहु प्रभु भाई ।
लीजिय तिनहि नाथ बुलवाई ॥
यह अनीति तिन सों कहि दीजै ।
वहुरि अपर चर्चा कछु कीजै ॥"
आये दनुज तुरत सुधि पाई ।
दीन्ह्यौं गरुड सँदेस पठाई ॥
"देव-दैत्य मोहि दोउ सम लागे ।
लखि गृह कलह सग हम त्यागे ॥
परे आइ हरि चरननि माही ।
घर की रारि देति कल नाही ॥

(५)

दोहा——जस तुम्हरे मन आवही, सोइ आचरहु सुजान ।
सकै टारि तेहि कौन जो, रचि राख्यौ भगवान ॥"

सकल प्रसंग सुन्यो जब काना ।
दनुजन तेहि अति अनुचित माना ॥
तिन कह "नृपति वचन कस दीना ।
रह्यो न्याय करवाल अधीना ॥
जौ लगि वा कर रहत कृपानी ।
नाहिन भूप भई कछु हानी ॥
हम सहैं नृप साथ तुम्हारो ।
याते नेकु न साहस हारो ॥
लीजिय चलि अमरावति घेरी ।
साजि बाजि गज सैन घनेरी ॥
भेजिय दूत अमरपति पासा ।
करै जाय इमि वचन प्रकासा ॥
"अर्ध भाग कै देहि पठाई ।
कै आयुध धरि करै लराई ॥
कमलहि श्रीहरि भेजि न देहैं ।
नहि सुरेस रम्भहि लौटैहैं ॥

(६)

दोहा—सब तिनको सम्मत लखि, बढ्यो [illegible] ।
अरु कुबेर सों कोप सब, लीजो भूप लुटाय ॥"

दानव सकल सदनि फिर [illegible] ।
[illegible] वीर सब सोवत जागे ॥
[illegible] [illegible]-युद्ध [illegible] [illegible] ।
[illegible] ॥
"[illegible] पञ्चादि [illegible] ।
नाथ ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

करिकै नास देव परिवारा ।
लैहौं अस बाँटि द्वै फारा ॥
सुरपति नगर बीर अस को है ।
रहै ठाढ मम सम्मुख जो है ॥
समर सुरेस चमू-चय काटी ।
देहुँ मिलाय मास अरु माटी ॥
ह्वै सरोष धनु सायक साधौं ।
नागपास इन्द्रहि गहि बाँधौं ॥

(७)

दोहा—जो राउर दिसि भूप कोउ, देखै नैन उघारि ।
मानि अमित अरि तासु जुग, लोचन लेहु निकारि ॥"

बधु वचन सुनि बलि हरखाने ।
"साधु साधु कहि तेहि सनमाने ॥
निहचै होत बधु नृप बाँही ।
करत राज वाकी भुज छाँही ॥"
बानासुर बोल्यौ कर जोगी ।
"नाथ ! सुनिय बिनती एक मोरी ॥
सेनापति मोहि देहु बनाई ।
लरौं कुमार संग मैं जाई ॥
आयुध अमित दीन्ह हर मोको ।
अरु कह कोऊ न जीतै तोकों ॥
षटमुख समर भार मैं लैहौ ।
आगे रथहिं बढन नहि दैहौ ॥
गुरु-सुत जानि मारिहौं नाही ।
लैहौं बाँधि अवसि रन माही ॥
नृप ! हर वचन मृषा नहि ह्वैहैं ।
सिव-सुत समर विजै हम पैहै ॥

(८)

दोहा—हौं अकिलो रन खेत महँ, करौं समर घमसान ।
गज चढ़ि देखैं आप कस, लरत सावरो बान ॥"

चुप ह्वै रह्यो बान जिमि भागी ।
कह्यो असुर-गुरु तब मन मागी ॥
"यह सब चाल बृहस्पति केरी ।
जानत कूट नीति बहुतेरी ॥
यदि नहिं सो गृह-कलह मिटावत ।
गुरुपदहि क्यों न डाटि समुझावत ॥
करियो अत्याचार अनीती ।
नाचो सदन और अनरीती ॥
अनाचार महि लोग सतावत ।
ते कायर भूपाल कहावत ॥
सिद्ध शान्ति सों लहत तपस्वी ।
पै न लहहिं भूपाल मनस्वी ॥
रिपु, रिन, अनल, रोग, नर-गई ।
रखना उनकी दुखदाई ॥
दीजै उनहि समूल उखारी ।
यथा उदित नभ नास तमारी ॥

(९)

दोहा—तातें आयसु मानि मम, तजिय अवसि [illegible] ।
मेरो मन [illegible] रहत, ह्वैहै शुभ परिनाम ॥"

[illegible] ।
[illegible] ॥
'नाथ' [illegible] ।
[illegible] ॥

राजकुमार रनहि अभिलाषत ।
सोई सबै सभासद भाखत ।।
अत्याचार जु पै सहि लैहै ।
कायर असुर समूह कहैहै ।।
याते नाथ रनहि मन दीजै ।
अब प्रभु और विचार न कीजै ।।
देहु कपट फल तिनहि चखाई ।
कीजै सधि भाग सम पाई ।।
यामै नृपति ! बिलब न नीको ।
लागत सिर कलक कौ टीको ।।
होतहि प्रात पयानो कीजै ।
सपदि घेरि अमरावनि लीजै ।।

(१०)

दोहा—ऐरावत, रम्भा, रमा, देहि सुरभि, तरु फेरि ।
ना तरु सुरनि प्रचारि प्रभु, कीजै समर दरेरि ।।"

सचिव वचन सुनि बलि मुसकाने ।
ताहि सराहि अमित सनमाने ।।
"तुम सन सचिव भाग्य सन पाई ।
लही दैत्य बसिन प्रभुताई ।।
हमहुँ धरब सिर गुरुअ रजाई ।
भावै सबनि करौ सो जाई ।।"
सुनि वलि-बचन सभा हरखानी ।
वरस्यौ सालि खेत जनु पानी ।।
रन-मत्रिन नृप तुरत बलावा ।
कह्यौ "चलन कर करहु बनावा ।।"
गृह-मत्रिहि इमि दीन्ह रजाई ।
समर-निमत्रन देहु पठाई ।।

लै निज सकल कटक की सामा ।
आवैं भूप करन संग्रामा ॥
मिलैं सुमेरु सैल ढिग आई ।
सभा विसर्जन नृपति कराई ॥"

(११)

दोहा—तब बानासुर, बधु सग, गयो भूप रनिवास ।
नाय नृपति पद पदुम सिर, गौनी सभा अवास ॥
तेहि निसि नींद परी नहि काहू ।
सबनि समर हित अमित उछाहू ॥
प्रातहि लगे बजन बहु बाजन ।
वाहन अस्त्र लगे सब साजन ॥
सब मिलि भूप द्वार चलि आये ।
भरे उछाह अमित छवि छाये ॥
तब लगि बलि निज अनुज समेता ।
बानासुरहु कढ़्यो सुर जेता ॥
गनपति गौरि गिरीस मनाई ।
गज चढ़ि चल्यो भूप हरखाई ॥
गोड़ दधि मीन आय दरसावत ।
सुरभी सवत्स बच्छ पियावत ॥
सगवा थाम गोद सिसु कीन्हे ।
सन्मुख शुभ सिवा रटि लीन्हे ॥
दक्षिण नैन बाहु नव फरकी ।
हरखी मही अली बदन की ॥

(१२)

दोहा—शुभ सूचक सगुन सगुन, गुनि हिय अमित उछाह ।
मिलत जात सनि सैनपुर, सपदि चले नरनाह ॥

वाजत मैन सैन पर डका ।
होत महा रव घोर अतका ।।
धुन्ध पूरि इमि चहुँ दिसि रहेऊ।
मनहुँ साँझ दिन मनि छिपि गयऊ।।
हाली धरा सेस फन डोले ।
करि चिक्कार द्विरद वहु वोले।।
गुहा माँहि निदिया तजि गाढ़ी ।
मिहिन आइ द्वार पै ठाढी ।।
भागे सव वनचर भय मानी ।
हलत थार पारा सम पानी ।।
चहुँ दिसि उडत धूरि इमि हेरो ।
धूम प्रताप-हुतासन केरो ।।
कै विधि पच प्रभूत मिटाई ।
रेनु मई नव रीति चलाई ।।
कै भुव-भार निवेदन लागी ।
पहुँची रेनु स्वर्ग भय-पागी ।।

(१३)

दोहा—या विधि केतिक दिनन चलि, हेमकूट के पास ।
किया सिविर वलि राज तहँ, लखि सव भाँति सुपास ।।

तँह निसि वसि मग खेद गमाई ।
प्रातहि जग्यो सुभट समुदाई ।।
चारन वस प्रमसन लागे ।
सुनि वर गिरा दैत्यपति जागे ।।
प्रातकृत्य करि सवन वुलाई ।
कीन्ह्यो रन-मत्रना सुहाई ।।
तुरत भूप इक दूत वुलायो ।
अरु सुरेस हित पत्र लिखायो ।।

"सब मिलि सागर मथन कीन्यो ।
पै मम भाग हमहिं नहिं दीन्यो ॥
छल करि सकल रत्न तुम लीन्यो ।
याहू सों हम कोप न कीन्यो ॥
लिय सतोष अमिय घट माहीं ।
सोऊ दीन्ह हमहिं तुम नाहीं ॥
कपट नारि को भेष बनाई ।
लियो छलि तेहि अनुज मुराई ॥

(१८)

दोहा—जननि एकहि सब के, देव दैत्य हम दोय ।
या विधि के आचरन सों, अहित घनेरो होय ॥

याते कह्यो हमारो कीजै ।
बंस बिनास करन न दीजै ॥
जैसे बन्धु बधु सो मारे ।
कबहुँ नीक नहिं भये हमारे ॥
रम्भा, रमा, अश्व, गज, धेनी ।
दीजै तुम्ह न आदर देनी ॥
याही में कल्यान तुम्हारो ।
देहु बाँटि मम-भाग हमारो ॥
नेकु न्याय करि तुमहिं विचारो ।
अबहुँ कर विरोध निवारो ॥
जो मम भाग सुरेस न दैहौ ।
तौ तुम राज करन नहिं पैहौ ॥
[illegible] तुम सन भाग [illegible] ।
कर गहि [illegible] लेहुँ [illegible] ॥
त्यागि देव [illegible] दानव [illegible], ।
यामें देहु भाग [illegible] देही ॥

(१५)

दोहा—जो याकौ अनुकूल नृप, उतर देत तुम नाहि ।
स्वागत कीजै आय कै, तब रन-खेतन माह्नि ॥"

चरवर मुख मुरेस सुधि पाई ।
विकट सुरारि चमू चलि आई ॥
निज करनी गुनि कछुक सकान्यौ ।
ह्वैहै युद्ध अवसि जिय जान्यौ ॥
अस गुनि सकल समाज बुलाई ।
आये सुर-समूह तेहि ठाँई ॥
जम, कुवेर आदिक दिगपाला ।
षटमुख जुत आये तेहि काला ॥
बैठे, निज निज आसन जाई ।
कीन्ही रन-मत्रना सुहाई ॥
कह सुरेस "अब काह विचारा ।
आयो असुर सेन बरियारा ॥"
षटमुख कह्यौ "मोर मत लीजै ।
आयौ सत्रु अवसि रन कीजै ॥"
तौ लगि इमि प्रतिहार जनायो ।
नाथ! सुरारि दूत इक आयो ॥

(१६)

दोहा—आयसु पाय सुरेस को, तेहि लै गयो लिवाइ ।
दई दूत वर पत्रिका, षटमुख हाथ गहाइ ॥

सुरप सकेत पत्र तिन बाँचो ।
जौ कुछ लिख्यौ हुतो सब साँचो ॥
कह्यौ सुरेस 'कहौ मत भाई ।
रम्भा, रमा, दई किमि जाई ॥

हय, गज, धेनु, विटप नहिं देहैं ।
देवनि सीस कटक न लेहैं ।
कबहिं अवसि समर सक नाहीं ।
लखिहैं बल केनो तिन माहीं ॥"
सकल सभा मिलि मत दृढ़ायो ।
करिय युद्ध जो अरि चलि आयो ॥
सो सुनि अति सुरेस अनुरागे ।
हरषित हीय कहन इमि लागे ॥
"भोगी वीर धरा को नामा ।
करै भोग जो नृप बल धामा ॥
लेहि राज जो बल भुज माहीं ।
माँगे ताहि देन कोउ नाहीं ॥'

(१७)

दोहा—इमि उत्तर लिखि दूत कर, दीन्यो पत्र पठाय ।
सुरप समर हित सजन कहँ, देवन दीन्ह रजाय ॥

प्रात होत रन चलि तयारी ।
गाजी देर चल नय भागी ॥
मन-पवन गामी हय लागे ।
मनहु जात मही नहिं लागे ॥
नर "विजिनर" रूप छवि छाये ।
धनु धरि सम्भु सुजन नरि आये ॥
मनि-मय दिव्य मुकुट सिर राजन ।
दिनकर प्रभा हरि जेहि लाजन ॥
भवननि सुन्दर गौर गमावै ।
सहित गरू मन चाह तुरावै ॥
कोउ चामीकर दल लगावै ।
कोउ चामर लै सीस ढुरावै ॥

जटा कलाप व्याल सन बाँधे।
ज्वलत त्रिसूल प्रबल कर साधे ॥
किये हिमाद्रि बृषभ असवारी।
चले रुद्र सिव-सूनु पछारी ॥

(१८)

दोहा—अचल - पच्छ - दारन - कुसल, कुलिस लिये निज हाथ।
ऐरावत हिम - स्त्रग - निभ, चढि गवने सुरनाथ ॥
करि मदमत्त मेप असवारी।
चल्यौ सिखी सुरनाथ पछारी ॥
आयुध धरि कहि बलकत बैननि।
क्रोध कृसानु कढत दोउ नैनन ॥
नील-इन्द्रमनि-काय विसाला।
चढ्यौ महिष चलि जम दिगपाला ॥
महा मेघ जे मग महँ आवत।
तुरत स्त्रग सन तिनहि हटावत ॥
किये प्रमत्त प्रेत असवारी।
नैरित चल्यौ क्रोध करि भारी ॥
नूतन जलद सरिस भयकारी।
महा मकर पै किये सवारी ॥
दारुन पास वाम कर लीन्हें।
चले जलेस रनहि मन दीन्हे ॥
धारे त्रिकट गदा कर माही।
चले कुबेर सम्भु-सुत पाही ॥

(१९)

दोहा—दिग-अम्बर-व्यापन-कुसल, मृग चढि अति छवि पाय।
मरुत अमित रन लालसा, निज हिय चढ्यौ बढाय ॥

लखि इमि देव चमू चलि आई ।
सुरपति अमित हिये हरखाई ॥
बोल्यो तब षटमुख तन हेरी ।
“करिय पयान न लाइय देरी ॥
सो सुनि सम्भु सुवन सिर नाई ।
स्यदन दीन्ह्यो सुमन चढाई ॥
गरजी देव - चमू हरषाई ।
उठी रेनु नये भानु छिपाई ॥
चढ़े मयूर [illegible] [illegible] ।
ताम [illegible] सों छबि [illegible] ॥
मन [illegible] [illegible] [illegible] ।
चले [illegible] [illegible] [illegible] पयाना ॥
उठी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आई ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

(२०)

दोहा—[illegible] तो [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥

व्यूह द्वार पै आपु बिराजे ।
मध्य भाग पै सुरपति राजे ॥
आरनि पै दिगपाल सुहाये ।
चक्रव्यूह येहि भाँति बनाये ॥
धनवन्तरि अस्विनीकुमारा ।
करत आहतन को उपचारा ॥
घन गन करत जात मग छाँही ।
वहत बयारि मुदित मन माँही ॥

(२१)

दोहा—चित्रगुप्त को सिबिरि वर, तँह राजत इक ठाम ।
मोदीखाने की जहाँ, सचित सारी साम ॥

या विधि लखि सुर सैन तयारी ।
साजी असुर कटक भयकारी ॥
तारक कमल-व्यूह निरमायो ।
सेनापति बलि-सुतहि बनायो ॥
मध्यभाग वलि आपु सुहाये ।
गज चढि भानु सरिस छबि छाये ॥
अपर असुर ब्लिराज सहाई ।
सजग भये निज धनुष चढाई ॥
सखनाद पूर्यो नभ जबही ।
धायो कोपि सभु-सुत तवही ॥
अति प्रचड धनु सर कर लीन्हें ।
तीछन वान फोक पर दीन्हें ॥
वानासुर लखि रथहि बढायो ।
जहँ षटबदन तहाँ चलि आयो ॥
अति विनीत ह्वै कीन्ह प्रनामा ।
आसिष दीन्ह होय मन कामा ॥

(२२)

दोहा—कह्यो बाल प्रभु पितु सरन , करत सदा हम प्रीति ।
जासु सत्रु की पन्थ गहि , करत महा अनरीति ॥

(२३)

अनरीति इमि तुम करत सत बिसराय पूरब नेह कौं ।
मैलो कियो गोरी बसन निज धूरि धसर देह सौं ।
तुम सग ही पय पान कीन्यो बैठि गिरिजा-गोद मैं ।
पीये नरायन बाल हम तुम सम्भु ही सा मोद मैं ॥

(२४)

यहि लागि तुम सों कहत नासौ बन्धु को निरवाहिये ।
रत्ना-स्तन को सुयस हिय येतो कठोर न चाहिये ।
तुम मात ही के गात पैं गैंने प्रहारा सायकैं ।
यहि लागि तुम सों सत्र बकत बीर ! सीस नसायकैं ॥

षष्ठ सर्ग

चौपाई

(१)

दोहा—बलिनन्दन मुख सौं सुनत, स्रवन सुधा सम बैन ।
सुमिरे पूरब प्रीति उर, पुलकि प्रफुल्लित नैन ॥

पटमुख कह्यौ "करौं का भाई ।
हैं कर्तव्य अमित दुखदाई ॥
ह्वैकै देव चमूचय नायक ।
क्यौं तिनको नहि बनौ सहायक ॥
यह नित पच्छपात अवराधत ।
वीरनि कौ सनेह क्रम बाधत ॥
अस कहि गुह कोदण्ड चढायो ।
होउ सजग कहि बान चलायो ॥"
सुनि गुह बचन बान रिसियायो ।
चड चाप निज चोपि चढायो ॥
"सजगअहौं" कहि बिसिख चलायौ ।
गुह-प्रेरित-सर काटि गिरायौ ॥
लग्यो बिसिख बानासुर मारन ।
काट्यो सैन हजार हजारन ॥
बलि-सुत बान गिरत रन कैसे ।
प्रलय पवन कदलीवन जैसे ॥

(२)

दोहा—इत पटमुख धनु तानि निज, छांड्यो बान कराल ।
धाये जनु रवि-कर निकर, कै बहु विषधर ब्याल ॥

इन सह असुर समूचय काटी ।
दीन्ह मिलाय मास अरु माटी ॥
सोनित सरित बही बिकराला ।
गज सिगाल जनु जुगुल करारा ॥
रथ के चक्र भवर समाना ।
बार सेवार सरित अनुमाना ॥
यहँ ढाल कच्छप मन मानो ।
सीसो सीप सरित जिय जानो ॥
जोगिनि भूत पिसाच पिसाची ।
मारु काटु धुनि बोलहि नाची ॥
भच्छहि मास रुधिर पुनि पीवहि ।
आमिष दहि बीर दोउ जीवहि ॥
कोऊ हार आंतन के धारत ।
कोऊ रंगो फारि निकारत ॥
कोउ मुंडन सों माल सवारत ।
कोउ सरोष नच्यो तन डारत ॥

(३)

दोहा—आयुध डारि भाजि गो, भयो भयातुर सैन ।
नाचत चौंसठ योगिनी रुधिर पियत बहु प्रेत ॥

देखा चारु [illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

त्याग्यो बान पवन को बाना ।
छनक माँहि जल सकल सुखाना ॥
आँधी उठी परम भय-दाई ।
दिये उड़ाय देव समुदाई ॥
व्याल-बान षटवदन चलायो ।
नागन सकल पवन तहँ खायो ।
अरु धाये बहु विषधर कारे ।
या विधि त्रिपुल सैन महारे ॥

(४)

दोहा—बानासुर अति कोप करि, तज्यो बर्हि को बान ।
छनहीं माँहि मयूरगन, कीन्ह्यौ अहि अवसान ॥
अन्धकार सर गुह तब त्याग्यौ ।
देखन सकल पच्छिगन भाग्यौ ॥
या विधि भयो घोर अँधियारा ।
सूझ न आपन हाथ पसारा ॥
अरि अरु मित्र परै लखि नाहीं ।
जाने सिंहनाद सन जाहीं ॥
पढ़ि रवि मन्त्र बान सर मारा ।
ताते फैलि रह्यौ उजियारा ॥
षटमुख कोपि कुधर सर त्यागे ।
चहुँ दिसि उड़न गगन गिरि लागे ॥
सो लखि दैत्य चमू भयमाना ।
त्याग्यो बान कुलिस को बाना ॥
गिरि ने भयो बज्र जब दूनो ।
फोरि पहार कियो सब चूनो ॥
नड़िन अस्त्र षटमुख तजि दीन्ह्यौ ।
इमि पवि बान निवारन कीन्ह्यौ ॥

(५)

दोहा—दिव्य अस्त्र दोउ ओर ते दोउ, रत्न प्रहार ।
हिय हरषान नरनाथ निमित, जनु जलधर जलधार ॥

पशुपति पुनि जम अस्त्र प्रहारा ।
मृत्यु अस्त्र तब [illegible] मारा ॥
ब्रह्मवान गुरु कोपि उठायो ।
नारायन सर वान चलायो ॥
अस्त्र अस्त्र सों गयो निवारन ।
तब लाग्यो तीछन सर मारन ॥
गुरु अपने मन माँहि विचारा ।
अब मारौं बलि-राजकुमारा ॥
अस गुनिकै निज सक्ति प्रहारी ।
चली अकास रत्न उजियारी ॥
छिटकी ज्योति चहुँ नभ कैसे ।
[illegible] के प्रगट [illegible] जैसे ॥
लागी हृदय सम्न नहि सूझी ।
महि गिरि परयो [illegible] जूझी ॥
ओनी छूटि स्रवन तें बाजी ।
[illegible] भाजी ॥

(६)

दोहा—विरथ भयो [illegible], देखत [illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

जथा वनज-वन करि मथि डारै ।
जैसे बाज लवा संहारै ।।
जिमि-करि निकर सिंह हनि डारै ।
खगगति अहि-वरूथ जिमि मारै ।।
सन्मुख सैन दृष्टि जो आई ।
छन महँ षटमुख मारि गिराई ।।
इतै विरथ बलि-राजकुमारा ।
भयो आन रथ पै असवारा ।।
अरु सारथि स्यंदन पलटावा ।
लै षटमुख सनमुख तब आवा ।।
सिंहनाद करि हाँक सुनायो ।
"सँभरौ देव! बान रन आयो ।।

(७)

दोहा——जब न रह्यौ रन माहि, तुम कीन्ह्यो सैन निपात।
अब मारौ जो पै चमू, तब परखौ बल तात ।।

हौं अपने मन यह प्रन धरहूँ ।
एक बान राउर बध करहूँ ।।
भूलिहु बान छुवौ जो आनहि ।
तौ मोहि सम्भु चरन की आनहि ।।
जो अनन्य मैं तुव पितु दासा ।
तौ यह बान करै तुव नासा ।।"
अस कहि महा-काल-सर लीन्ह्यो ।
पढि के मंत्र फोंक पर दीन्ह्यो ।।
देखि त्रास देवनि जिय बाढ्यो ।
बान त्रोन सो जब सर काढ्यो ।।
स्रवन प्रयत सरासर तान्यो ।
छूटत बान सब्द घहरान्यो ।।

षटमुख लगे कठिन सर मारन ।
पै न सके सह बान निवारन ॥
[illegible] नहिं मारन भयऊ ।
छाती फारि निकरि सर गयऊ ॥

(८)

दोहा—मच्छित गुहहिं विलोकि तब, सारथि रथ पलटाय ।
तेहि अश्विनीकुमार के, शिविर दियो पहुँचाय ॥
तिन तुरतहि व्रन बन्धन कीन्ह्यो ।
मुरछा शम्भु-सुवन तजि दीन्ह्यो ॥
अरु कीन्ह्यो अपार उपचारा ।
बिगत भेद भो उमा-कुमारा ॥
नाना चन्दन धनप गहि पानी ।
[illegible] नर आनी ॥
"[illegible] प्रभु युद्ध न कीजै ।
औषधि को प्रभाव लखि लीजै ॥"
तब गहि तिनहि शिविर महँ ल्यायो ।
तहाँ तुरत विश्राम करायो ॥
मुच्छित भयो [illegible] जबहीं ।
[illegible] बान [illegible] तबहीं ॥
षटमुख [illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

(९)

दोहा—[illegible] ।
[illegible] ॥

इत सुर कटक विहाल त्रिलोकी ।
ससि निज र.प सवयो नहि गेकी ॥
करि अति कोपि सरासन ताना ।
लाग्यो निमित्त चलावन वाना ॥
या विधि सो निसिपति सर मारयो ।
धनु, गुन, खडि वान को डारचो ॥
करि धनु सगुन वान सर त्यागे ।
विधु-रथ-कुरँग न ठहरत आगे ॥
वानासुर ससि लरहि प्रचारी ।
दोउ अति सबल न मानहि हारी ॥
तब मयक मन मत्र विचारा ।
करौं विरथ वलि-राजकुमारा ॥
अस मन गुनि वहु विसिख पँवारे ।
रथ सारथी बाजि हनि डारे ॥
चढि रथ अपर वान रन कोन्ह्यो ।
पै त्रै वार विरथ ससि कीन्ह्यो ॥

(१०)

दोहा—रवि अथवत लखि सैन दोउ, कीन्ह्यो सिविर पयान ।
बीरन धरयो उतारि निज, अस्त्र कवच सिरत्रान ॥

भोजन करि कछु लहि विस्रामा ।
बानासुर गवन्यो गृह-धामा ॥
लखि तेहि सभु-सुवन हरखाई ।
लियो भुजा भरि कण्ठ लगाई ॥
पुनि निज आसन पै वैठारा ।
कीन्हो विविध भाँति सतकारा ॥
औसरि रहे देर लौं खेलत ।
विहँसि तमोल दुहू मुख मेलत ॥

गया तुमार निखिल मुरनाथा ।
वानातुर नागो पद-माला ॥
आनिय दियो मुनि मन नाही ।
पनि रन-कौशल मारु सगाहीं ॥
यहि विधि लैहू रन समय जिनाई ।
शाला भिखिन मार रुमाई ॥
गज भिन्दिं घर गज उमागा ।
मैनावनि नाग ह चलावा ॥

(१७)

दोहा—श्रावति नर-जलधर-रूप, मनहुँ अपर नगराज ।
नदि ललन नागक अतुल, दियो युद्ध सो नाज ॥

अतुर रुपो महासन ज्वहीं ।
धायो कालि ननगर तवहीं ॥
कुञ्जर मीस अर्हि मर नागे ।
दिन निसाकर आदि नुनि भागे ॥
गिरि नगाम नारी हार ।
टरन कुंग न भार मैं बारे ॥
गैन गन गौहर नर गैन ।
मनार मिन्द्र गजन्द गिरि दैन ॥
गैहि विनाहि कुर निरार उमगे ।
फेरि उपला टारि धनरे ॥
जनि नन्दो न्द्र मन टूटे ।
माम मादि धर गिर रूटे ॥
बढ़ि नन गहि दन नहराई ।
मारि गर्नाहि जरर जन नाहिं ॥
मनान इन दैन मय नाम ।
नकर दिलिहि मुरान्लिर गोमन ॥

(१२)

दोहा—बिकट दैत्य की मारु तें, काहू धरयो न धीर ।
बिडरि भगे रन-खेत ते, बडे बडे बलवीर ॥
भागन लगे देवगन जबही ।
कियो सख धुनि तारक तबही ॥
सिंहनाद करि हाँक सुनायो ।
है कोउ सुभट जो सम्मुख आयो ॥१॥
अखिल देव कुल मारि गिरायो ।
एक छत्र बलिराज करायो ॥
देव-त्रस नहिं एक उबारौं ।
सेना-सहित आजु सब मारौं ॥
अपनो दल डोलत जब ताक्यो ।
मत्त महिष आगे जम हाँक्यो ॥
महिष दुरद सोहत रन कैसे ।
लडत जुगुल कज्जल गिरि जैसे ॥
एकहि गदा सीस जम दयऊ ।
पाँच पैगि पाछे गज गयऊ ॥
गदा घाव गजराज सँभारयो ।
झझकि सीस आगे पगु धारयो ॥

(१३)

दोहा—जमहिं लरत यहि भाँति लखि, तारक गहि कोदड ।
निसित बिसिख बरसाय बहु, कियो दड जुग खड ॥
अस्त्र हीन जम कहँ लखि पायो ।
हँसि तारक इमि बचन सुनायो ॥
अतक ! धनु सँभारि निज लीजै ।
सावधान मोसो रन कीजै ॥

जब सुनि निज जमराज रजायसु ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

छोड्यो [illegible] बान [illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नाना ।

[illegible] [illegible] [illegible] बाना ॥

या विधि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] तें [illegible] ॥

[illegible] बान [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] बान [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

([illegible])

दोहा—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] बान [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] ।

[illegible] ॥

[illegible] ।

[illegible] ॥

[illegible] ।

[illegible] ॥

[illegible] ।

[illegible] ॥

[illegible] ।

[illegible] ॥

[illegible] ।

[illegible] ॥

सब मिलि घेरि तारकहि लीन्ह्यो ।
महा मार तेहि ऊपर कीन्ह्यो ॥
वृषभनि मध्य लसत गज कैसे ।
जमुना मिली गग मँह जैसे ॥

(१५)

दोहा—अरु सोनित स्यन्दित अवनि, सो सरसुति सम लाग ।
बीरन कौ रन भूमि इमि, पग पग होत प्रयाग ॥
अकुस हनत कोप गज कीन्ह्यो ।
पकरि सु ड गजमुख की लीन्ह्यो ॥
खैंचन लग्यो अमित-बल-धारी ।
दियो काटि रद परसु प्रहारी ॥
सोनित स्रवत सोह तन कारे ।
जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे ॥
दिरद रदन या विधि ते टूटे ।
गनपति महाँ कष्ट सो छूटे ॥
इतै रुद्र तारक चहुँ घेरी ।
लागे करन मारु बहुतेरी ॥
दीर्घकरन तेहि रच्छन धायो ।
पै गजमुख बीचहि अटकायो ।
परसु प्रहार गजानन कीन्ह्यो ।
दन्त उपारि असुर एक लीन्ह्यो ।
विकल सकल तनु सुड हिलावत ।
धावत इत उत बचन सुनावत ॥

(१६)

दोहा—पवन अरुनदृग सो लरत, विद्युतजीह कृसानु ।
असिलोमा जलपति लरै, अन्धकार सौं भानु ॥

गनहि छवि घन-विमल विहारी ।
दिन रात्रिया गली नहि गारी ॥
तिन गजपुर पद पाटे धारो ।
आगे गिरि गोधि तरि नारो ॥
गुहा नलित मन हिम्ड पसार ।
रमा रहे जल जीभ निहार ॥
रन तीरन उन्मार उठावे ।
फेन उठाय नहीं सगारे ॥

।

॥

तारक कह् "कत वचन उचारत।
बीर न तीर तिया पै डारत ॥
याते अस्त्र प्रहारि न दैहौं ।
निज कुल-कलित कलंक न लैहौं ॥"
लख्यो निडर बैठ्यो तेहि जबही ।
बोली कोपि कालिका तबही ॥
"लेहि धनुष किन मूढ सँभारी ।
आइ गई बस मीचु तिहारी ॥"

(१८)

दोहा——कह् तारक "हम तियनि पै, कबहुँ न डारत तीर।
भेजु सपदि तापस-सुतहि, बनत बड़ो जो बीर ॥"

सुनि इमि गिरा बीर-रस-सानी ।
लौटि गई रन त्यागि भवानी ॥
पुनि तारक कीन्ह्यो धनु धारन ।
लाग्यो देव चमू-चय मारन ॥
सांकरि खैंचि महावत लीन्ह्यो ।
पेलि गयद कटक पर दीन्ह्यो ॥
मगल बुध देखत यह धाये ।
दोउ निज बाजिनि एँड लगाये ॥
दोउ करि कुम्भ कोपि चढि गयेऊ ।
बुध निज कुत प्रहारत भयेऊ ॥
सो लाग्यो हौदा महँ जाई ।
इमि तारक तन चोट न आई ॥
मगल खड्ग प्रहारन कीन्ह्यो ।
तारक घाव ढाल पर लीन्ह्यो ॥
टूट्यो खङ्ग मूठि कर लीन्हे ।
लौट्यो वीर नमित मुख कीन्हे ॥

(१०)

दोहा—वेगवन्त रथ पै चढ़े, तुरग ध्वजा फहरात ।
धरि धनुसर कर शम्भु-सुत, आवत परयो लखात ॥

निरखि कुमारहिं सनमुख ठाढ़ा ।
तारक-हृदय कोप अति बाढ़ा ॥
“हूँ दयो तोहिं असुर-कुल-घाती ।
अबहिं मेटहिं कुमारहुँ छाती ॥’
अस कहि विषम बान सधाना ।
श्रवन-प्रमान सरासन ताना ॥
[illegible] गुह “दैत [illegible] घाता ।
अन्तिम मर्म [illegible] आयो ॥
जाहि [illegible] कुमार मद भागे ।
[illegible] अति [illegible] ॥
[illegible] बान [illegible] ।
[illegible] पुनि [illegible] ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥

(११)

दोहा—[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ।

अजहूँ कुलिस हाँथ महँ मोरे।
छेद्यो पच्छ पहारनि केरे॥
जौ लगि अस्त्र रहत मम हाथा।
तौ लगि अरिहि न नावत माथा॥
सुरपति सत्रु कोऊ वरियारा।
यहै अमित अपमान हमारा॥
सोऊ रहै अमरपुर घेरे।
धमकावै करि नैन तरेरे॥
सुरप तजै रन पीठि दिखाई।
याहू तै वडि कौन हँसाई॥
सम्भु-सुवन-सम सेनप जाके।
दस दिगपाल सहायक वाके॥
महाकाल मम दिस ते लरई।
वाकी हानि कहा कोउ करई॥
पुनि राउर असीस सिर मेरे।
मीचहुँ आइ सकै नहिं नेरे॥

(२४)

दोहा—याते गुरुवर करि कृपा, आसिष दीजै मोहि।
अवहि सत्रु को मान मथि, विजयी सुरगन होहि॥"

लखि उछाह सुरपति मनमाही।
सुर-गुरु रोकि सक्यौ तेहि नाही॥
सपदि नाय निज गुरु पदभाला।
चल्यौ समर हित सक्र उताला॥
अपनो दल डोलत जब ताक्यो।
मत्त मतग सुरप तब हाँक्यो॥
निज गयद वलि-त्रघु चलायो।
तेहि सुरेस सम्मुख पहुँचायो॥

देवराज तब या विधि भाख्यो ।
"आये आपु बलिहि पत राख्यो ॥
तुम मन समर उचित नहिं भाई ।
राजा राजहि सोह लराई ॥
पठवहु बलिहि लरै सो आई ।
दरहूँ दैत्य - मद-प्रभुताई" ॥
सुनि इमि गिरा कोटि सो आयो ।
अरु बलि सों इमि वचन सुनायो ॥

(७५)

दोहा—"कहे पुरन्दर आपु सों, यह [illegible] के हेत ।
सकल भय सो भूप नहिं, सोहि [illegible] नहिं देत ॥"

बधु-वचन सुनि [illegible] मुसकाई ।
चल्यो सबहि बलि [illegible] बड़ाई ॥
आतुर बलिहि विलोक्यो [illegible] ।
[illegible] ॥
दोउ [illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
सुनहु "दैत्य [illegible] ! अभागे ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible]

(२६)

दोहा—सुनि सुरपति के वचन इमि, बलि करि लोचन लाल ।
सगुन कियो धनु सुमिरि गुरु, सायक साधि कराल ॥

दोऊ वीर क्रोध सन पागे ।
तीखन बान चलावन लागे ॥
सुरपति सर या विधि सों छाँट्यो ।
भूमि अकास बान सों पाट्यो ॥
पै बलि नैकु न हीय सकान्यो ।
सर सवानि प्रबल रन ठान्यो ॥
दुहूँ ओर सर बरसत कैसे ।
भादव जलद घटा नभ जैसे ॥
निसित विसिष सुरपति फटकार्यो ।
कोपि विरोचन-सुत-उर मार्यो ॥
लागत बान भई तन पीरा ।
रुधिर धार गा भीजि सरीरा ॥
तीखन विसिख जबहिं हिय लाग्यो ।
क्रोध अनल उर अंतर जाग्यो ॥
स्रवन-प्रयत खैंचि निज चापा ।
छाँड्यो बान अमित करि दापा ॥

(२७)

दोहा—काट्यो सब अरि के विसिख, पुनि कीन्ह्यो सर-जाल ।
कस्यप - सुत के हिय हन्यो, बलि नृप बान कराल ॥

तब बलि निज जन्तहिं सनकार्यो ।
अंकुस तिन गज सीस प्रहार्यो ॥
झझकि सुंड आगे पगु धार्यो ।
निज सिर ऐरावत सिर मार्यो ॥

(२६)

दोहा—सुनि सुरपति के वचन इमि, बलि करि लोचन लाल ।
सगुन कियो धनु सुमिरि गुरु, सायक साधि कराल ॥
दोऊ वीर क्रोध सन पागे ।
तीखन बान चलावन लागे ॥
सुरपति सर या विधि सो छाँट्यो ।
भूमि अकास बान सों पाट्यो ॥
पै बलि नैकु न हीय सकान्यो ।
सर सधानि प्रबल रन ठान्यो ॥
दुहूँ ओर सर बरसत कैसे ।
भादौं जलद घटा नभ जैसे ॥
निसित बिसिष सुरपति फटकार्यो ।
कोपि विरोचन-सुत-उर मार्यो ॥
लागत बान भई तन पीरा ।
रुधिर धार गा भीजि सरीरा ॥
तीखन बिसिख जबहिं हिय लाग्यो ।
क्रोध अनल उर अंतर जाग्यो ॥
स्रवन-प्रयत खैंचि निज चापा ।
छाँड्यो बान अमित करि दापा ॥

(२७)

दोहा—काट्यो सब अरि के बिसिख, पुनि कीन्ह्यो सर-जाल ।
कस्यप - सुत के हिय हन्यो, बलि नृप बान कराल ॥
तब बलि निज जन्तहिं सनकार्यो ।
अंकुस तिन गज सीस प्रहार्यो ॥
झझकि मुंड आगे पगु धार्यो ।
निज सिर ऐरावत सिर मार्यो ॥

"सजग अहौ तुम करौ प्रहारा" ।
हँसि बोल्यौ बलिराज उदारा ॥
"इते दिनन लौं भई लराई ।
बिजय पराजय काहु न पाई ॥

(२९)

दोहा—देवासुर - सग्राम कौ, है अतिम दिन आज ।
याते निज भुजबल सकल, प्रकट करौ सुरराज ॥"

लरत दुऔ तहँ मण्डल बाँधे ।
सैनिक सकल लखत चुप साधे ॥
कबहुँक मुरत कबहुँ पुनि भिरही ।
नाना भाँति दाँव दोउ करही ॥
जबहि कोपि बलि खड्ग प्रहारत ।
सुरपति वार चर्म्म सौं टारत ॥
दोउ निज अस्त्र हाँक दै हाँकत ।
पद के भार मेदिनी काँपत ॥
कह बलि "अब सुरराज सँभारो ।
आजु जानिबो तेज तुम्हारो ।"
बारहि बार कोपि बलि झरपत ।
पै सुरेस मन नैकु न डरपत ॥
लागत खड्ग कुलिस सो जबही ।
निकसत अग्नि-भभूका तबही ॥
चचल चपल भिरत दोउ बीरा ।
मनहुँ बीररस धरे सरीरा ॥

(३०)

दोहा—पाँच घरी बलि इन्द्र सौं, भयो युद्ध यहि भाँति ।
अतिहि स्रमित दोऊ भये, पै नहि मुरत अराति ॥

"सजग अहौ तुम करौ प्रहारा" ।
हँसि बोल्यौ बलिराज उदारा ॥
"इते दिनन लौं भई लराई ।
बिजय पराजय काहु न पाई ॥

(२९)

दोहा—देवासुर - संग्राम कौ, है अंतिम दिन आज ।
याते निज भुजबल सकल, प्रकट करौ सुरराज ॥"

लरत दुऔ तहँ मण्डल बाँधे ।
सैनिक सकल लखत चुप साधे ॥
कबहुँक मुरत कबहुँ पुनि भिरही ।
नाना भाँति दाँव दोउ करही ॥
जबहिं कोपि बलि खड्ग प्रहारत ।
सुरपति वार चर्म्म सों टारत ॥
दोउ निज अस्त्र हाँक दै हाँकत ।
पद के भार मेदिनी काँपत ॥
कह बलि "अब सुरराज सँभारो ।
आजु जानिबो तेज तुम्हारो ।"
बारहिं बार कोपि बलि झरपत ।
पै सुरेस मन नैकु न डरपत ॥
लागत खड्ग कुलिस सो जबही ।
निकसत अग्नि-भभूका तबही ॥
चञ्चल चपल भिरत दोउ बीरा ।
मनहुँ बीररस धरे सरीरा ॥

(३०)

दोहा—पाँच घरी बलि इन्द्र सों, भयो युद्ध यहि भाँति ।
अतिहि स्रमित दोऊ भये, पै नहिं मुरत अराति ॥

सप्तम सर्ग

सवैया

(१)

नाँचत चौंसठि योगिनी भूत,
पिसाच महा मन मैं अनुरागे ।
गीध सिवा अरु स्वान सियार,
जहाँ बिचरैं सब संसय त्यागे ।
घायल ह्वै जे परे बर वीर,
न भागि सकैं अतिसैं भय पागे ।
ता समैं सीरी समीर लगे,
सुरनाथ तहाँ मुरछा तजि जागे ॥

(२)

खोल्त ही चख चारिहू ओर,
लख्यौ तिन घोर झुकी अँधियारी ।
वेग सौं सोनित की सरिता वहै,
वीरन हीय भरैं भय भारी ।
त्योंही महीधर स्रंग पै ओषधि-
वृन्द की देखि कछू उजियारी ।
ठाढो भयो कर मैं गहि वज्र,
दियौ चलिवे कहँ पाँव अगारी ॥

सप्तम सर्ग

सवैया

(१)

नांचत चौसठि योगिनी भूत,
पिसाच महा मन मैं अनुरागे ।
गीध सिवा अरु स्वान सियार,
जहाँ बिचरैं सब संसय त्यागे ।
घायल ह्वै जे परे बर वीर,
न भागि सकैं अतिसै भय पागे ।
ता समैं सीरी समीर लगे,
सुरनाथ तहाँ मुरछा तजि जागे ॥

(२)

खोलत ही चख चारिहू ओर,
लख्यौ तिन घोर झुकी अँधियारी ।
वेग सौ सोनित की सरिता बहै,
वीरन हीय भरै भय भारी ।
त्योंही महीधर स्रृंग पै ओषधि-
वृन्द की देखि कछू उजियारी ।
ठाढो भयो कर में गहि वज्र,
दियो चलिवे कहँ पाँव अगारी ॥

(६)

पार कै सक्र दुरन्त नदी,
अमरावती की दिसि को मगु लीन्हो।
मारग हीं मे मिल्यो चर आय,
सुनाय दसा तहँ की सब दीन्हो।
"दैतनि घेरि लई नगरी,
भगि आयो इतै तिन मोहि न चीन्हो।
बेगि ही नाथ बताइए तौ,
अब चाहिए जो कछु या समै कीन्हो।।"

(७)

मातु तनै तिय को तहँ सौध मे,
सो घिरिबो सुनि के घबरान्यो।
भाल मे और लिख्यो है कहा,
बिधि को कछू खेल न जात है जान्यो।
पै अति साहस को करिकै,
दुरभागि ही सौ लिरिबो हिये ठान्यो।
औ चर के सँग सोचत ही,
अमरावती या बिधि सो नियरान्यो।।

(८)

दीसै प्रकास न मदिर मे कहुँ,
जे उठि अम्बर को मनो चूमें।
सीतल मन्द समीर लगे,
कछु सैनिक हू निंदिया बस भूमें।
आगि जराये किते चर-बृन्द,
लखाई परे तँह सोवत भू मे।
लीन्हे मसाल लगावत हांकनि,
बांके सवार चहूँ दिसि घूमै।।

(६)

पार कै सत्रु दुरन्त नदी,
अमरावती की दिसि कौ मगु लीन्हो।
मारग हीं मैं मिल्यो चर आय,
सुनाय दसा तहँ की सब दीन्हो।
"दैतनि घेरि लई नगरी,
भगि आयो इतै तिन मोहि न चीन्हो।
बेगि ही नाथ बताइए तौ,
अब चाहिए जो कछु या समै कीन्हो॥"

(७)

मातु तनै तिय कौ तहँ सौध मैं,
सो घिरिबो सुनि कै घबरान्यौ।
भाल मै और लिख्यौ है कहा,
बिधि को कछू खेल न जात है जान्यौ।
पै अति साहस कौ करिकै,
दुरभागि ही सौ लिरिबो हिये ठान्यौ।
औ चर के सँग सोचत ही,
अमरावती या बिधि सो नियरान्यौ॥

(८)

दीसै प्रकास न मंदिर मै कहुँ,
जे उठि अम्बर को मनो चूमैं।
सीतल मन्द समीर लगे,
कछु सैनिक हू निंदिया बस भूमैं।
आगि जराये किते चर-बृन्द,
लखाई परे तँह सोवत भू मैं।
लीन्हे मसाल लगावत हांकनि,
बांके सवार चहूँ दिसि घूमै॥

(१२)

अजहूँ लखौ वज्र लसै कर मै,
अरु साहस हू नहि टूट्यौ हमारो ।
विधि वाम ही तौ प्रतिकूल भयो,
बिगरो है कहा लरिकै जु पै हारो ।
परिनाम यही है जुवां-रन को,
कोउ बैठत राज गयो कोउ मारो ।
गिरि-वृन्द के पखन छेदनहार,
अबै जग जीवत लाल तुम्हारो ।।"

(१३)

रोस रचे सुनि बैननि कौ,
जननी रद आँगुरी दाविकै भाख्यौ ।
"हे सुत ! देखौ कहा ह्वै गयो,
अब और कहा करिवे अभिलाख्यौ ।
दीन्हो तिन्हें सम भाग नही,
फल याते कुनीतिहु कौ तुम चाख्यौ ।
घेरी चहूँ दिसि सौं नगरी,
यह देखिकै धीरज जात न राख्यौ ।।

(१४)

सैनिक आपुस मै वतरात है,
होत ही प्रात इतै वलि आइहै ।
तोरिकै तोरन द्वारनि को,
अमरावती की वह लूटि कराइहै ।
व्योम विचुम्वित सौध गिरायकै,
वान-तड़ाग इनै खनवाइहै ।
औ रवि को रथ रोकन हार,
विरोचन-खम्भ इहाँ बनवाइहै ।

(१२)

अजहूँ लखौ वज्र लसै कर मै,
अरु साहस हू नहि टूट्यौ हमारो ।
विधि वाम ही तौं प्रतिकूल भयो,
बिगरो है कहा लरिकै जु पै हारो ।
परिनाम यही है जुवां-रन को,
कोउ वैठत राज गयो कोउ मारो ।
गिरि-वृन्द के पखन छेदनहार,
अबै जग जीवत लाल तुम्हारो ।।"

(१३)

रोस रचे सुनि बैननि कौ,
जननी रद आँगुरी दाविकै भास्यौ ।
"हे सुत ! देखौ कहा ह्वै गयो,
अव और कहा करिवे अभिलास्यौ ।
दीन्हो तिन्हें सम भाग नही,
फल याते कुनीतिहु को तुम चास्यौ ।
घेरी चहूँ दिसि सौं नगरी,
यह देखिकै धीरज जात न रास्यौ ।।

(१४)

सैनिक आपुस मै वतरात हे,
होत ही प्रात इतै वलि आइहै ।
तोरिकै तोरन द्वारनि को,
अमरावती की वह लूटि कराइहै ।
व्योम विचुम्वित सौध गिरायकै,
वान-तड़ाग इनै खनवाइहै ।
औ रवि को रथ रोकन हार,
विरोचन-खम्भ इहाँ वनवाइहै ।

(१८)

जान समै जबै उत्तम आसिष,
देन लगी तिन्है मातु असेसन ।
बैठि गवाछ पुलोमजा आपु,
लगी पिय को चलिबो अवरेखन ।
सूखे उसासन सौं अधरा,
अँसुवानि सौं भीजे उरोज बिसेसन ।
चचल कै चख इन्द्र - बधू,
निज प्रानपिया को लगी इमि देखन ॥

(१९)

ठाढो तहाँ पै हुतो सजो बाजि,
समीर को बेग लजावनवारो ।
तापै सवार भयो अमरेस,
औ मानसरोवर ओर सिधारो ।
पै पथरीली धरा पै परे–
हय टाप के, जागि परो रखवारो ।
सो चुप साधे कियो सरि पार ,
दिखाई परो तब दूजो किनारो ॥

(२०)

"कौन है जात" सुने तेहि हाँक,
लगे सबै भूकन स्वान सिकारी ।
पाहरू जागि परे लै मसाल,
सवारहु बाजिन को ललकारी ।
चारिहु ओर लख्यौ तिन धाय,
पै दीठि तरगिनि पै जबै डारी ।
सक भयो उनके उर मैं,
जबही तिन तु ग तरग निहारी ॥

(१८)

जान समै जबै उत्तम आसिष,
देन लगी तिन्है मातु असेसन ।
बैठि गवाछ पुलोमजा आपु,
लगी पिय को चलिबो अवरेखन ।
सूखे उसासन सौं अधरा,
अँसुवानि सौं भीजे उरोज बिसेसन ।
चंचल कै चख इन्द्र - बधू,
निज प्रानपिया को लगी इमि देखन ॥

(१९)

ठाढो तहाँ पै हुतो सजो बाजि,
समीर को बेग लजावनवारो ।
तापै सवार भयो अमरेस,
औ मानसरोवर ओर सिधारो ।
पै पथरीली धरा पै परे–
हय टाप के, जागि परो रखवारो ।
सो चुप साधे कियो सरि पार,
दिखाई परो तब दूजो किनारो ॥

(२०)

"कौन है जात" सुने तेहि हाँक,
लगे सबै भूकन स्वान सिकारी ।
पाहरू जागि परे लै मसाल,
सवारहु बाजिन को ललकारी ।
चारिहु ओर लख्यौ तिन धाय,
पै दीठि तरंगिनि पै जबै डारी ।
सक भयो उनके उर मैं,
जबही तिन तुंग तरंग निहारी ॥

(२४)

बज्र कपाट लगे जेहि में,
अमरावती की दृढ अर्गला तोरी ।
त्यौ अभिमानी सुरेस के सैनिक–
बृन्दनि के अवलेप को मोरी ।
छीनिके सम्पति देवन की,
पुरिखानि ने जाहि हुती इमि जोरी ।
दुदुभी देत बिजै की सबै मिलि,
आय गये निज राज बहोरी ॥

(२५)

केतिक द्यौस बिताय सुरेस,
हिमालय अक में जाय पधारचो ।
जाति मरालनि की अवली,
तिनकौ अनुसारि कै बाजिंहि डारचो ।
त्यौंही तुषार-बिमडित-स्रग–
चढाई बिलोकि कछू हिय हारचो ।
पै असुरेसनि कौ भय मानिकै,
पार कियो गिरि साहस वारचो ॥

(२६)

वा दिसि जाय हिमालय के,
तिन मानसरोवर कौ लखि पायौ ।
मानौ चहूँधा सिलानि घिरचो,
लघु सिन्धु सुधा कौ लसै लहरायो ।
तुग तरगनि कौ लखिकै,
अपने मन मैं अति आनन्द छायौ ।
त्यागि तुरग निवारि स्रमै,
सर माँहि तबै वर वीर अन्हायो ॥

(२४)

बज्र कपाट लगे जेहि में,
अमरावती की दृढ अर्गला तोरी ।
त्यौं अभिमानी सुरेस के सैनिक–
बृन्दनि के अवलेप को मोरी ।
छीनिके सम्पति देवन की,
पुरिखानि ने जाहि हुती इमि जोरी ।
दुंदुभी देत बिजै की सबै मिलि,
आय गये निज राज बहोरी ॥

(२५)

केतिक द्यौस बिताय सुरेस,
हिमालय अंक में जाय पधारचो ।
जाति मरालनि की अवली,
तिनको अनुसारि कै बाजिंह डारचो ।
त्यौंही तुषार-बिमंडित-स्रृंग–
चढाई बिलोकि कछू हिय हारचो ।
पै असुरेसनि को भय मानिकै,
पार कियो गिरि साहस वारचो ॥

(२६)

वा दिसि जाय हिमालय के,
तिन मानसरोवर को लखि पायो ।
मानो चहूँधा सिलानि घिरचो,
लघु सिन्धु सुधा को लसै लहरायो ।
तुंग तरंगनि को लखिकै,
अपने मन मैं अति आनन्द छायो ।
त्यागि तुरंग निवारि स्रमैं,
सर माँहि तबै वर वीर अन्हायो ॥

(३०)

पै ये विलोचन कौ सुख दैन,
न नीके लगे कोऊ साज सुरेस कौ।
धीरज कौन बँधावै तिन्हैं,
खटको जिन्हैं मातु-तिया सुत-देस कौ।
आस की पासनि बाँधि हियो,
तिन झेल्यो अमेस विदेस कलेस कौ।
याही अँदेस रह्यौ हिय में,
अमरावती सो नहि पायो सदेस कौ॥

(३१)

होत जो सक कहूँ अरि की,
तिन्हैं ध्यान तौ मातु निदेस कौ आवत।
औ हरि-नाभि-मृनाल की नाल में,
जायकै आपनो गात छिपावत।
बीति यौं जात सबै दिन रात,
कबौ करगौरि महेस मनावत।
या विधि मानसरोवर मै,
सुरनाथ रहे किते वर्ष बितावत॥

(३२)

सारदी रैन मै किन्नरी आय,
पियारे पिया के गरे भुज मेलै।
त्यो सुर - सुन्दरी मानस के,
तट वैठिकै चोर मिहिचिनी खेलै।
सीरी समीर लगै तन मं,
लचकै तिय मानो हिलै वर वेलैं।
जानि न पावती ते सखियानि,
कपोलनि चुम्बन को भजे जे लैं॥

(३०)

पै ये बिलोचन कौ सुख दैन,
    न नीके लगे कोऊ साज सुरेस को ।
धीरज कौन बँधावै तिन्है,
    खटको जिन्हैं मातु-तिया सुत-देस को ।
आस की पासनि बाँधि हियो,
    तिन झेल्यो अमेस बिदेस कलेस को ।
याही अँदेस रह्यो हिय में,
    अमरावती सो नहि पायो सदेस कौ ॥

(३१)

होत जो सक कहूँ अरि की,
    तिन्है ध्यान तौ मातु निदेस कौ आवत ।
औ हरि-नाभि-मृनाल की नाल में,
    जायकै आपनो गात छिपावत ।
बीति यै जात सबै दिन रात,
    कबौ करजोरि महेस मनावत ।
या बिधि मानसरोवर मै,
    सुरनाथ रहे किते वर्ष बितावत ॥

(३२)

सारदी रैन मै किन्नरी आय,
    पियारे पिया के गरे भुज मेलै ।
त्यो सुर - सुन्दरी मानस के,
    तट बैठिकै चोर मिहिचिनी खेलै ।
सीरी समीर लगै तन मै,
    लचकै तिय मानौ हिलै वर बेलैं ।
जानि न पावती ते सखियानि,
    कपोलनि चुम्बन को भजै जे लैं ॥

(३६)

"हा मम कर्म विपाकनि सों,
सुख राज समाजहु को सब छूट्यो।
सेवत देव रहे हमरे पग,
सो अधिकार हहा विधि लूट्यो।
प्रान हू पाँवर पै न परात,
प्रभाव करै विषहू नहीं घूँट्यो।
जानि परै हमको अब तो,
सत जननि हू को भयो फल झूँठ्यो॥

(३७)

कैसी भई अमरावती की गति,
सो कछु आजु लौ जानि न पाई।
मातु पै जानै न बीती कहा,
न पुलोमजा को हमरी सुधि आई।
जानती मानसरोवर में दुरयो,
तौ हू नहीं कुसलात पठाई।
धीरज जात सबै ही खस्यो,
वा जयन्त की हीय गुने लरिकाई॥

(३८)

मंजु मनोज की देखि बहार,
समाधि लगाय सकै नहिं जोगी।
त्योंहीं अनन्द उमंग जगे,
पलकानि को छाँडि उठै लगैं रोगी।
चौंस मयंक की देखि कलानि,
कहौ किमि धीरज धारै वियोगी।
द्यौसनि कैसे वितावै भला,
विसराय नियै हम जैसे संयोगी।

(३६)

"हा मम कर्म विपाकनि सों,
सुख राज समाजहु को सब छूट्यो ।
सेवत देव रहे हमरे पग,
सो अधिकार हहा विधि लूट्यो ।
प्रान हू पाँवर पै न परात,
प्रभाव करै विषहू नहीं घूँट्यो ।
जानि परै हमको अब तौ,
सत जननि हू को भयो फल झूँठ्यो ॥

(३७)

कैसी भई अमरावती की गति,
सो कछु आजु लौं जानि न पाई ।
मातु पै जानै न बीती कहा,
न पुलोमजा कौ हमरी सुधि आई ।
जानती मानसरोवर में दुरयो,
तौ हू नहीं कुसलात पठाई ।
धीरज जात सबै ही खस्यौ,
वा जयन्त की हीय गुने लरिकाई ॥

(३८)

मंजु मनोज की देखि बहार,
समाधि लगाय सकै नहिं जोगी ।
त्यौंहि अनन्द उमंग जगे,
पलकानि कौ छाँडि उठै लगैं रोगी ।
चौन्ह मयंक की देखि कलानि,
कहौ किमि धीरज धारै वियोगी ।
यौंमनि कैसे वितावै भला,
बिसराय नियैं हम जैसे संयोगी ।

(४२)

हंस के द्वन्दहि देखत ही,
अपने दृग तें अँसुवा बरसायो ।
प्रेम - सँदेस पठाइबे कौ,
मघवा अभिलाष कछू दरसायो ॥
सीस हिलायकैं राज मराल,
मनौ सिर धारिबै कौ सरसायौ।
सोक - अवेग सौ पै तबही,
कछु भाषि सक्यो न गरो भरि आयो॥

(४३)

"हौ तुम हंस के बंसिन मैं,
बिधि के वर बाहन आपु सुहाये ।
गौरव रावरो कैसे कहौं,
रहौ सारदा कौ निज पीठि चढाये ।
पानिप सौ पय कौ बिलगाइबो,
त्योंही सुभाव ही सौं सिखि आये ।
या लगि आप सौं आजु कछू,
बिनती करिबो हमहूँ हिय ठाये ॥

(४४)

संकर नारद सारद सेष,
औ पारद सुक्र सुधारस भीनो ।
चाँदनी चन्दन चाँदी औ चन्द,
सिता सिकता हली हास प्रवीनो ।
केँवरा जाही जुही अरु कैरव,
कुन्द मँदार सरोज नवीनो ।
देवधुनी मुकता अरु संखनि,
माँगि सबै तुम सौ रंग लीनो ॥

(४२)

हंस के द्वन्दहिं देखत ही,
अपने दृग तें अँसुवा बरसायो ।
प्रेम - सँदेस पठाइबे कौ,
मघवा अभिलाष कछू दरसायो ॥
सीस हिलायकै राज मराल,
मनौ मिर धारिबे कौ सरसायौ।
सोक - अवेग सौं पै तबही,
कछु भाषि सक्यो न गरो भरि आयौ॥

(४३)

"हौ तुम हंस के बंसिन मैं,
बिधि के वर बाहन आपु सुहाये ।
गौरव रावरो कैसे कहौं,
रहौ सारदा कौ निज पीठि चढाये ।
पानिप सौ पय कौ बिलगाइबो,
त्यौंही सुभाव ही सौं सिखि आये ।
या लगि आप सौं आजु कछू,
बिनती करिबो हमहूँ हिय ठाये ॥

(४४)

संकर नारद सारद सेष,
औ पारद सुक्र सुधारस भीनो ।
चाँदनी चन्दन चाँदी औ चन्द,
सिता सिकता हली हास प्रबीनो ।
केंवरा जाही जुही अरु कैरव,
कुन्द मँदार सरोज नवीनो ।
देवधुनी मुकता अरु सखनि,
माँगि सबै तुम सौं रंग लीनो ॥

(४८)

कीजौ न नेकु निसा बिसराम,
    तहाँ सिवसंकर के गन ऐंहैं ।
सम्भु-लिलार की चन्द छटा महँ,
    वै उतै केतिक द्वन्द मचैहैं ।
त्यौं तिनके बिकटानन देखि,
    सखा ! निहचै तुव प्रान सुखैहैं ।
मूरति मोहनी रावरी हेरि,
    न छाँडिहैं जो पै कहूँ गहि पैहैं ।।

(४९)

या बिधि सम्भु को सैल निहारि,
    सखा अलकापुरी को मगु लीजौ ।
जच्छ के द्वन्द तहाँ बिहरैं,
    तिनकी दिसि भूलिहू दीठि न दीजौ ।
भेंटती ह्वैहैं प्रिया पिय को,
    जिनके रस-रंग मैं भंग न कीजौ ।
लाजनि वै मरिहैं सुर-बाम,
    इती बिनती मन मानि पतीजौ ।।

(५०)

जच्छ-तिया तहँ कंज - से पायँ,
    गुलाब भवानि भवावती ह्वैहैं ।
नायनियाँ कर कौल पै धारिकै,
    एड़िन जावक लगावती ह्वैहैं ।
सौंधे सुगन्धिन केस कलाप,
    प्रसूननि ही सौ सजावती ह्वैहैं ।
सौसनी सारी मुही तन पै सजे,
    नन्दन को चली आवती ह्वैहैं ।।

(४८)

कीजौ न नेकु निसा बिसराम,
तहाँ सिवसंकर के गन ऐहैं।
सम्भु-लिलार की चन्द छटा महँ,
वै उतै केतिक द्वन्द मचैहैं।
त्यौं तिनके विकटानन देखि,
सखा! निहचै तुव प्रान सुखैहैं।
मूरति मोहनी रावरी हेरि,
न छाँडिहैं जो पै कहूँ गहि पैहैं॥

(४९)

या बिधि सम्भु को सैल निहारि,
सखा अलकापुरी को मगु लीजौ।
जच्छ के द्वन्द तहाँ बिहरैं,
तिनकी दिसि भूलिहू दीठि न दीजौ।
भेंटती ह्वैहैं प्रिया पिय कौ,
जिनके रस-रंग में भंग न कीजौ।
लाजनि वै मरिहैं सुर-बाम,
इती बिनती मन मानि पतीजौ॥

(५०)

जच्छ-तिया तहँ कंज-से पायँ,
गुलाब झवानि झवावती ह्वैहै।
नायनियाँ कर कौल पै धारिकै,
एड़िन जावक लगावती ह्वैहै।
सौंधे सुगन्धिन केस कलाप,
प्रसूननि ही सो सजावती ह्वैहैं।
सौसनी सारी मुही तन पै सजे,
नन्दन को चली आवती ह्वैहै॥

(४८)

कीजौ न नेकु निसा विसराम,
तहाँ सिवसंकर के गन ऐहैं ।
सम्भु-लिलार की चन्द छटा महँ,
वै उतै केतिक द्वन्द मचैहैं ।
त्यौं तिनके बिकटानन देखि,
सखा ! निहचै तुव प्रान सुखैहैं ।
मूरति मोहनी रावरी हेरि,
न छाँडिहैं जो पै कहूँ गहि पैहैं ॥

(४९)

या बिधि सम्भु को सैल निहारि,
सखा अलकापुरी को मगु लीजौ ।
जच्छ के द्वन्द तहाँ बिहरैं,
तिनकी दिसि भूलिहू दीठि न दीजौ ।
भेंटती ह्वैहै प्रिया पिय कौ,
जिनके रस-रंग मैं भंग न कीजौ ।
लाजनि वै मरिहै सुर-बाम,
इती बिनती मन मानि पतीजौ ॥

(५०)

जच्छ-तिया तहँ कंज-से पायँ,
गुलाब झवानि झवावती ह्वैहै ।
नायनियाँ कर कौल पै धारिकै,
एडिन जावक लगावती ह्वैहै ।
सौंधे सुगन्धिन केस कलाप,
प्रसूननि ही सौं सजावती ह्वैहै ।
सौसनी सारी मुही तन पै सजे,
नन्दन को चली आवती ह्वैहै ॥

(४८)

कीजौ न नेकु निसा विसराम,
तहाँ सिवसकर के गन ऐहैं ।
सम्भु-लिलार की चन्द छटा महँ,
वै उतै केतिक द्वन्द मचैहैं ।
त्यौं तिनके बिकटानन देखि,
सखा ! निहचै तुव प्रान सुखैहैं ।
मूरति मोहनी रावरी हेरि,
न छाँडिहैं जो पै कहूँ गहि पैहैं ॥

(४९)

या बिधि सम्भु के सैल निहारि,
सखा अलकापुरी को मगु लीजौ ।
जच्छ के द्वन्द तहाँ बिहरैं,
तिनकी दिसि भूलिहू दीठि न दीजौ ।
भेंटती ह्वैहै प्रिया पिय कौ,
जिनके रस-रग मे भग न कीजौ ।
लाजनि वै मरिहै सुर-बाम,
इती बिनती मन मानि पतीजौ ॥

(५०)

जच्छ-तिया तहँ कज - से पायँ,
गुलाब झवानि झवावती ह्वैहै ।
नायनियाँ कर कौल पै धारिकै,
एडिन जावक लगावती ह्वैहै ।
सौंधे सुगन्धिन केस कलाप,
प्रसूननि ही सौं सजावती ह्वैहै ।
सौसनी सारी मुही तन पै सजे,
नन्दन को चली आवती ह्वैहै ॥

(५४)

वा समै सारद औ करतार को,
प्यारे सखा सविसेष मनाइयौ ।
औ पद सेवन के बदले,
तिनसो बर बोलन को तुम पाइयौ ।
यों सफला निज बानि बनाय,
सची को हमारो सँदेस सुनाइयौ ।
कौल - सी कोमल-हीय-तियाहि,
सबै बिधि धीरज आपु बँधाइयौ ।।

(५५)

"तेरे ही पुन्नि प्रभावनि सों,
कुसली अबलौं सुनौ बालम तेरे ।
पायौ सदेसौ नही तुम्हरो,
नित याही अँदेसनि सों रहै घेरे ।
धीरज धारो हिये मे तिया,
औ निरासहि आवन दीजै न नेरे ।
एक न एक दिना सुमुखी !,
सुख के कबहूँ दिन आइहै मेरे ।।

(५६)

भूलिकै आपु कहूँ जननी–
समुहे जनि लोचन वारि बहैयौ ।
आवै जबै हमरी सुधि तो,
सबही विधि सो तिन्हैं धीर धरैयौ ।
त्यों मधुरी मधुरी बतियानि,
जयन्त को प्यारी सदा बहरैयौ ।
मानियौ यामे अनैसो नही,
कबहूँ कबौ रम्भहु के घर जैयौ ।।

(५४)

वा समै सारद औ करतार को,
प्यारे सखा सविसेष मनाइयो ।
औ पद सेवन के बदले,
तिनसो वर बोलन को तुम पाइयो ।
यों सफला निज बानि बनाय,
सची को हमारो सँदेस सुनाइयो ।
कौल - सी कोमल-हीय-तियाहि,
सबै विधि धीरज आपु बँधाइयो ॥

(५५)

"तेरे ही पुन्नि प्रभावनि सों,
कुसली अबलों सुनो बालम तेरे ।
पायो सदेसो नही तुम्हरो,
नित याही अँदेसनि सों रहे घेरे ।
धीरज धारो हिये मे तिया,
औ निरासहि आवन दीजै न नेरे ।
एक न एक दिना सुमुखी !,
सुख के कबहूँ दिन आइहै मेरे ॥

(५६)

भूलिकै आपु कहूँ जननी–
समुहे जनि लोचन वारि बहैयो ।
आवै जबै हमरी सुधि तो,
सबही विधि सो तिन्हें धीर धरैयो ।
त्यों मधुरी मधुरी बतियानि,
जयन्त को प्यारी सदा बहरैयो ।
मानियो यामे अनैसो नही,
कबहूँ कबो रम्भहु के घर जैयो ॥

(६०)

इमि सुरनायक के बिरह-निवेदन को,
आये राज-हस वाकी वामहि सुनायकै ।
अमरावती को समाचार औ सची को सोग,
वाही भाँति भाख्यौ त्यो सुरेस ढिग जायकै ।
पायकै तिया की सुधि त्योंही पाकसासन ने,
तिनहि असीस दीन्हो हिय हरखायकै ।
"जाडन की यामिनी में एहो राजहस तुम्हे,
भामिनी-बियोग जनि घेरै कहूँ आयकै" ।।

अष्टम सर्ग

रोला

(१)

इमि रन सुरन हराय चहुँ फिरवाय दुहाई ।
अमरावति में विजय-धुजा अपनी फहराई ।।
नहुष नृपहिं अभिषेकि सौंपि सुरपति-सिंहासन ।
लौटयौ पुनि निज राज प्रबल बलि अरि-दल-नासन ।।

(२)

सुनत दूत मुख प्रजा भूप को देस पधारन ।
लागी सजन समोद सकल स्वागत सम्भारन ।।
हाट, बाट, पुर, गली भली बिधि गई सजाई ।
तोरन, धुजा, पताक, कलस बहु भाँति बनाई ।।

(३)

जहँ तहँ फाटक रुचिर राज-पथ माँहि बनाये ।
अमरावती प्रवेस - द्वार सों लगत सोहाये ।।
सरस राग सों बजत सजु तिनपै सहनाई ।
सुनि जिनकी धुनि मधुर जात सुरबृन्द सिहाई ।।

(४)

कुलगुरु आयो साजि भूप को सब समस्ता ।
नग बसन कंचन-मनि-सुन्दर चौदस्ता ।।
मनि मय मंदिर जासु पाट पै धरी अंबारी ।
तापै चढ़ि चलि अनुज [illegible] अगारी ।।

(५)

कंचन स्यंदन साजि हेम किंकिनि बहु जामैं ।
उच्चस्रव-हय जुते लगी मकतूल लगामैं ।।
तेहि रथ पै आसीन लसत बानासुर कैसे ।
गिरनन्दिन को सुवन सोह रन धुर पर जैसे ।।

(६)

धारे दिव्य दुकूल परी उर-गज-मनि-माला ।
सीस बैंजनी पाग प्रभा कलँगी की आला ।।
झूलत कटि करवाल किये अर्स्वान असवारी ।
स्वागत बलि को करन सचिव-गन चले पछारी ।।

(७)

ता पाछे असवार चले निज तुरँग नचावत ।
निज कर रुद्र-त्रिसूल-उग्र-भाला चमकावत ।।
पीछे चली पदाति अपर सेवक समुदाई ।
साजे बसन अनूप भूप सो रूप लखाई ।।

(८)

बटु सँग आवत सुक्र वाम कर लकुट सोहावत ।
डगमगात डग धरत पादुका पथ खटकावत ।।
सोहत कटि पटपीत जज्ञ-उपवीत सोहावन ।
राजत भाल त्रिपुण्ड अच्छमाला कर पावन ।।

(९)

कुन्तल गुरुहि विलोकि दीन्ह गज को बैठारी ।
धरयो निसैनी पाँयँ सुक्र आचार्य सम्हारी ।।
बैठ्यो आसन जाय कह्यो "गज वेगि चलावो ।
केतो भयो बिलम्ब नेकु अब बार न लावो ।।"

(१०)

परयो निसाननि घाव चल्यो या विधि अनुरागे ।
बंदि वृन्द वर बदन बस विरुदावलि लागे ॥
या विधि असुर-निकाय सकल निज साज सजाये ।
बलि को स्वागत करन काज पुर बाहर आये ॥

(११)

उन सब असुर-समूह धरा मंडलहि कँपावत ।
पूरत चहुँदिसि धूरि गगन भयभूरि भरावत ॥
सुनि सुनि जिनकी हाँक बाहु बीरन के फरकत ।
पै धावत पथ छाँड़ि बाजि रविरथ इमि भरकत ॥

(१२)

रही धरि नभ पूरि भानु नहिं परत लखाई ।
घरघरान धुनि परी सबै कानन मैं आई ॥
सो सुनि असुर-समूह विपुल विसमय भय पागे ।
निज निज दृगनि उठाय गगन दिसि देखन लागे ॥

(१३)

लागे करन विचार कहा यह आदित आवत ।
पै वाकी गति बस अहो समुहे रह धावत ॥
तौ है कहा कृसानु जासु दाहै अति ऊँची ।
पै यह उतरत अवनि ओर कीन्हें गति नीची ॥

(१४)

तौ लौं सबै विमान ओर सहि दिसि दिखाई ।
हर हर घर घर धुनि घोर परी सहु निकट सुनाई ॥
जासों असुर-समूह हेरि रन्ता दिलदति जारत ।
वहि नभ पारन तेज लखि सों मुखा उतारत ॥

(१५)

"जैतु विरोचननन्द दैत कुल विरद उधारन।
जै कस्यप कुलकेतु' लगे इमि असुर उचारन॥
आयो अवनि बिमान लिये अस्विनीकुमारन।
सक्रुसिरा को पानि किये बलि निज कर धारन॥

(१६)

धरत धरा पग परसि असुर-गुरु-पद-जल-जाता।
प्रेम न हिये समात निरखि निकटहि लघु-भ्राता॥
गुरु निज बाहु उठाय पगी जामै अछमाला।
लगे देन असीस प्रेम पुलकित तेहि काला॥

(१७)

"जौलौं दक्खिन सिन्धु रहै मनि खण्डनि पूरे।
जोलौं हिम सो ढंके रहै हिमराज-कँगूरे॥
जौलौं रवि-ससि-नखत, बहत सुरधुनि जल जौलौं।
कस्यप-कुल-कल-कीर्ति-धुजा फहरै नभ तौलौं॥"

(१८)

मिल्यौ ललकि लघु-बन्धु सीस बलि पायन राखी।
भुज प्रलम्ब गर डारि अमिय मृदु बैननि भाखी॥
कह अस्विनीकुमार "गाढ भेंटौ जनि याको।
लग्यो कुलिस कौ घाव कहूँ फटि जाय न टाँको॥"

(१९)

पुनि बानासुर आय पिता-पद-पंकज लाग्यो।
कर गहि सुतहि उठाय माथ सूँघत अनुराग्यो॥
बहुरि सचिव-गन निकट जाय नृप को सिर नाई।
लगे महीपहि देन सबै मिलि विजय-बधाई॥

बैठि सिविरि कछु काल खाय पुनि मधुर मिठाई ।
अतर-गुलावनि सींचि सकल पथ-स्रमहि गँवाई ॥
बहुरि असुरगन हेरि अतिहि मन महँ अनुरागे ।
तिनको परिचय देन समुद बलि या विधि लागे ॥

(२१)

"दीर्घकरन यह दनुज अनुज लौं मम हितकारी ।
लर्यो सम्भुसुत साथ ताहि रन माहि प्रचारी ॥
परसु-घाय सिर खाय पायँ पीछे नहि टार्यो ।
दुरद-बदन को रदन समर इन कोपि उपार्यो ॥

(२२)

दम्भासुर लघु-बधु वीर जम्भासुर केरो ।
महाकाल सो लर्यो तऊ मुख नेकु न फेरो ॥
जिते दण्ड के घाव आपु अपने सिर झेली ।
दियो महिष ते खैंचि मही अंतकहि ढकेली ॥

(२३)

दीरघबाहु उदण्ड रक्त-लोचन रन-धीरा ।
रन मह्यो नहँ जाय लरत जँह आपु समीरा ॥
यह है विद्युतजीह दैत्य अति प्रबल प्रतापी ।
अग्निहि समर हराय अचल निज कीरति थापी ॥

(२४)

अग्निनेत्र यह लर्यो समर जलराज प्रचारी ।
रन तजि भगे जलेश मानि यहि सन्मुख हारी ॥
पुनि अग्नि[illegible] [illegible] बरुन निज पास प्रहारी ।
[illegible] विदारि फारि तन दूनि पछारी ॥

(२५)

यह है तारक असुर भिर्‌यौ षटवदन प्रचारी।
निसित त्रिसिख बरसाय सकल सुर-सैन बिडारी।।
याही ने गहि सक्ति सक्ति-धर के हिय मारी।
मूर्छित सुतहि बिलोकि भये सोकित त्रिपुरारी।।

(२६)

यह जम्भासुर लर्‌यौ आपु सुरराज अगारी।
जरजर कीनो सक्र याहि निज बानन मारी।।
मार्‌यौ सुरपति बज्र तऊ नहि साहस छूटे।
छाती सुर-गजदन्त लगे मूलक सम टूटे।।

(२७)

यह बिडाल-दृग असुर भूरि बल साहसवारो।
अलकाधिप सौ लरयौ अमित सुर सैन बिदारो।।
कोपि चण्ड करवाल धनप याके सिर झारी।
पै नहि काहू भाँति धरयौ इन पाँव पछारी।।

(२८)

या बिधि सबनि सराहि कही सबकी प्रभुताई।
कीन्ही कृपा अपार भये रन आय सहाई।।
रन - खेतन मैं लरे अपर जे दैत्य घनेरे।
कहौं कहाँ लौं धन्यवाद भाजन सब मेरे।।"

(२९)

तब बोल्यौ सिरसकु कहा हमरी प्रभुताई।
राउर अमित प्रताप दई हम सबन बड़ाई।।
निज अधिकारन हेतु न्याय-रन कीन्ह प्रचारी।
याते विजय विभूति दीन्ह दैतनि त्रिपुरारी।।

(३०)

तब बोल्यो नृप सचिव नाथ! अब देर न कीजै।
प्रजा-चकोरनि चन्द्र-बदन को दरसन दीजै॥
जोवन होइहैं बाट बड़े महराज अगारी।
लोचन पलक न लाइ लखनि होइहैं महतारी॥

(३१)

यह सुनि वाहन चढ्यो फिरयो सब असुर समाजा।
परत नगारनि चोट विपुल बाजत बर बाजा॥
सजी अटारिन नगर नवल अबला अनुरागी।
बलि पैं मुदित प्रसून लवा बरसावन लागी॥

(३२)

मतगयन्दनि पै चढी लसै बनिता बहुतेरी।
बरसावति मुसकानि-सुधा-घनसार घनेरी॥
तिनके आनन-इन्दु मंजु या विधि छवि छाजे।
मानो चन्दनवारि बँधी अँखियनि की राजे॥

(३३)

ज्योंही जयधुनि तुमुल गगन में गूँजन लागी।
सुनि सुनि तजि गृह-काज सकल प्रमदा-गन भागी॥
नृप-दरस की करि उछाह जनितैं अनुरागी।
धाय गवाछनि पास तियागन देखन लागी॥

(३४)

हरबराय निज सखी एक दृग अंजन दीन्हे।
दूजो रंजन काज सखी अँगुरी महँ लीन्हे॥
भूषा कोऊ सजी नेम करियानि सँवारे।
देखी पै एक पंज नटी निज नोष अटारी॥

(३५)

कोउ निज चरन भँवाय गुलाबनि झाँयनि प्यारी।
जावक लावत रही सुघर नाइन सुकुमारी ।।
बाजन की धुनि मुनत बाम खिरकी दिस धाई ।
धवल सु चादर बिछी ताहि अरुनारि वनाई ।।

(३६)

गूँथति मुक्तनि माल रही कोऊ अलबेली।
'अरी आय किन देखु' कही कोउ चतुर सहेली ।।
बँध्यो अँगूठा ताग तासु की सुधि बिसराई ।
मोतिन की तिय पाँति मही बिथुरावत आई ।।

(३७)

छुट्यौ छरा को छोर बाँधिवे की सुधि नाही ।
नीबी सिथिल बिलोकि गह्यो तिय पट कर माही ।।
सीसो पग छिदि गयो निकारन ताहि न पाई ।
पै दौरत लँगरात बाम खिरकी लौ आई ।।

(३८)

भूपति को लखि वेष कोटि कदर्प लजावन ।
आयतलोचन बाम लगी तिनको फल पावन ।।
पै लखि दनुज-समाज विषम विकटाननधारी ।
वालक भाजे भभरि मानि हिय मैं भय भारी ।।

(३९)

मग लोगनि मुख देत चले इमि भूपति आवत ।
कस्यप-कुल-विधु-विजय-धुजा नभ में फहरावत ।।
कोऊ पान मग देत कोऊ हिम सीतल पानी ।
कोउ मेलत उर माल कुसल पूँछत मृदु वानी ।।

(८०)

कोऊ सुधा-सम स्वादु प्रपानक लाय पियावत ।
त्रिविध मिठाइन लाय मुदित मन सबनि खवावत ॥
पद्म सरा के जाय पान छवि कहै बखानी ।
मनौ अम्बु-निधि माहि गयो रहि केवल पानी ॥

(८१)

लगि दिन-मनि के चलन नगर उद्यानहि आये ।
मनि-दीपन सों सहे जासु के विटप सजाये ॥
निसरी धवल प्रकास पाय छिटकी उजियारी ।
ढूँढे हू नहिं मिलत तहाँ कितहूँ अँधियारी ॥

(८२)

धवल प्रभा के बीच विमल विधु सो सुखकारी ।
मनि-प्रदीप बहु बरै मनहुँ नखतावलि प्यारी ॥
मुदित महीपहि देन काज जग-विजय-बधाई ।
नभ-मण्डल मनु रह्यो मही-मण्डल नियराई ॥

(८३)

राज-सौध की भीति महा मनि-दीपनि सोहत ।
स्यामल पाँति-प्रदीप तिन्हैं देखत मन मोहत ॥
विविध रंग के चक्र तहाँ मनिगन के राजत ।
मनौं बसन रहे दुभा अमित सोभा तनि छाजत ॥

(८४)

सिखरनि पै गयो जबहिं सबनि अनुरागी ।
सरासनि की होत तहाँ सोभा सब लागी ॥
पवनि विनोद-सुगन्ध उड़यो ... ।
... ॥

(४५)

हँसि बिरोचन कह्यौ "रही अब साध न दूजी ।
सब ही विधि सो जाय भुजा बलि की बलि पूजी ॥"
नि मुद मंगल बैन थार दासी लै आई ।
पुजवाई बलि बाँह जनक आदेसहिं पाई ॥

(४६)

ानँद हिय न समात उठी रोमनि की राजी ।
आनन - ओप अमंद चंद भाग्यौ नभ लाजी ॥
घुंट कछुक हटाय भाय भरि हीय अमेषन ।
सुर - विजयी निज पियहिं लगी रानी अवरेखन ॥

(४७)

हुरि सुतहिं उर लाय सीस धरि पंकज पानी ।
बोली सहज सुभाय मातु इमि मंजुलबानी ॥
'कमल सो कोमल गात कहाँ कुलिसायुध धारे ।
कहौ तात केहि भाँति अरातिन रन सहारे ॥"

(४८)

बिहँसि वदन बलि कह्यौ "चरन अवलम्बन तेरो ।
बहुरि जनक की कृपा अनुग्रह पितरन केरो ॥
कहौ कठिन अस काज कौन तिहुँ लोकन माही ।
आयसु पाय पुजाय सकै तेरो सुत नाही ॥"

(४९)

इमि सब सुभट - समूह नृपहिं मन्दिर पहुँचाई ।
लौटे निज निज सदन चरन पंकज सिरनाई ॥
सबनि यथा - थल राखि सबै सुख-साम सजाई ।
बानासुर हू फिर्‌यौ राज - मन्दिर हरषाई ॥

(५०)

भोजन कै अति चाखनो भूप,
चले निज मन्दिर को सुखदाई ।
फेन-सी सेज पै पौढ़े निसंक,
तमोल दिये तिय ने हरखाई ।
पाद-पीयन चाँपि सहीर के,
बातन ही में अनन्द बढ़ाई ।
या विधि सों नरपाल के सौन्ज,
नैननि में निदिया नियराई ॥

नवम सर्ग

दोहा

(१)

कौल कली बिकसी निरखि, नखतावलि छवि छीन ।
दीपक प्रभा मलीन लखि, जाग्यौ भूप प्रवीन ॥

(२)

बाजत सहनाई सरस, मधुर भैरवी गाय ।
विमल बंस - विरुदावली, चारन रहे सुनाय ॥

(३)

सुनत सूत-सुत-मुख-वचन, उठ्यो महीपति जागि ।
सुप्रतीक सुनि हंस-रव, गंग-पुलिन जिमि त्यागि ॥

(४)

दिवस-क्रिया करि मुदित मन, सादर पूजि महेस ।
सभा-अयोजन करन को, सचिवनि दीन निदेस ॥

(५)

या विधि अधिकारी सबै, भूपति आयसु पाय ।
यथा-समय निज मंच पै, मुदित विराजे आय ॥

(६)

तौ लगि सुत सचिवनि सहित, आयो दैत्य - नरेस ।
ज्यौं सुर-गुरु बुधजुत करत, निसिपति गगन प्रवेस ॥

(७)

सोहत हिमगिरि स्रंग ज्यौं, दरपति सिंह-कुमार ।
ज्यों मयूर की पीठ पै, राजत आपु कुमार ॥

(८)

विबुध-सभा मधि जिमि लसत, अमरनाथ छवि छाय ।
तिमि निज आसन पै बिहँसि, बलि नृप बैठ्यो आय ॥

(९)

हरन जगत - अनुराग परागुन, लसि सोभा सरसाय ।
जिमि सुमेरु के स्रृंग पै, दिनपति रह्यो सुहाय ॥

(१०)

देव - उदय - आसा - निसा, विनसन लगी न बार ।
भाग दैतकुल को जग्यो, औ बलि सुजस अपार ॥

(११)

वन्दि असुर गुरु चरन जुग, कह्यो भूप सिरनाय ।
"भेटयो विजय-विभूति सब, रावर आसिष पाय ॥

(१२)

जो कृपान बल सो कहूँ, प्रभुता पाई जाय ।
छीन होत ही तासु बल, सो पल मैं विनसाय ॥

(१३)

पर धर्मी [illegible] ही, [illegible] छिनात ।
[illegible] सो [illegible], [illegible] न जात ॥

(१४)

[illegible]
[illegible] ॥

(१५)

[illegible] ।
[illegible] ॥

(१६)

[illegible] ।

(१७)

कीन्हे मख निन्नानवे, अब ही लौ हरषाय ।
रह्यौ सेष अब एक ही, ता कहँ देउ कराय ॥

(१८)

सुरपति - पद पै याहि ते, लहौ अभय अधिकार ।
तथा अरिन को मान-मद, जारि करौ सब छार ॥

(१९)

वा मृनाल की नाल मे, सुरपति रह्यौ लुकाय ।
करै नहुष बिपरीत किमि, यहै रह्यौ मन आय ॥

(२०)

याते गुरुवर करि कृपा, दीजै मोहि रजाय ।
अस्वमेध के करन कौ, साज सजावौ जाय ॥"

(२१)

कह्यौ सुक्र "नृप तव वचन, है अभिनन्दन जोग ।
सत मख पूरे करि मुदित, करौ इन्द्र-पद-भोग ॥"

(२२)

गुरु तें अभिमत बचन सुनि, हरख्यो हीय नरेस ।
मख - सम्भारनि सजन कौं, सचिवनि दीन निदेस ॥

(२३)

विमल नरमदा सरि निकट, सोधी भूमि ललाम ।
मख-मण्डल विरच्यो तहाँ, मयदानव अभिराम ॥

(२४)

नभ मे फहरत नृपति की, वह मख-धुजा उतग ।
उरझन जामै आपकै, दिन-मनि रुचिर तुरग ॥

(२५)

वहुवा नव - वारिद - पटल, याही सो टकरात ।
जवै वायु वस आय कहुँ, वा दिसि सो कढि जात ॥

(२६)

कै कश्यप-वर-वंश की, विमल धुजा फहरात ।
कै वह बलि-नृप को सुजस, कहत अमरपुर जात ॥

(२७)

भेजि चरन वहँ मुनिगन, मख हित लीन बुलाय ।
बलि-विन्ध्या सहित नृपति, दीच्छा लीन्ही आय ॥

(२८)

अस्वमेध याजन करन, द्विज - गन धरम धुरीन ।
बलिहि करावन मख लगे, सादर परम प्रवीन ॥

(२९)

प्रथम थापि सिन्धुर-बदन, पुनि नव ग्रहनि बुलाय ।
हवन-कुण्ड महँ मुनिन मिलि, अनल दियो प्रगटाय ॥

(३०)

सोहत बलि-विन्ध्या सहित, तहँ बलि नृप छबि धाम ।
मनहुँ त्रिपुर-अरि विजय हित, करत जग्य रति-काम ॥

(३१)

कै श्रीहरि - कमला सहित, कै विधि-बानी साथ ।
कै नगपति - धिय संग लै, सोहत सम्भु निकाम ॥

(३२)

कै पुलोम - तनया सहित, राजत आपु सुरेस ।
कै रोहिनि निज संग लै, लसत रुचिर राकेस ॥

(३३)

कैधौं भक्ति - विराग दोउ, कै विद्या अरु ग्यान
राजत बलि-विन्ध्या-सहित या विधि नृप सुजान ॥

(३४)

पुनि विनायक सरसुती, बन्दि असुर-नृप पाय ।

(३५)

फरकन लाग्यो वाम को, दच्छिन भुज अरु नैन।
त्यौं छीकत नृप कौ निरखि, भयो सुक्र बेचैन ॥

(३६)

घेर्‌यौ सबनि विषाद कछु, वदन-प्रभा भइ मन्द।
ज्यौं रजनी अवसान मैं, छीन - कला - छवि चन्द ॥

(३७)

ज्यौं तुषार सौं वनज-वन, अति विवरन ह्वै जात।
मखमण्डल की वा समै, तैसिय दसा लखात ॥

(३८)

लखि के सबके मलिन मुख, बोल्यो सुक्र सुजान।
"कहा करन लागे नृपति, या विधि मनहिं मलान ॥

(३९)

सकल विघन - बाधानि के, जो सिर राखत पाँयँ।
बर - माला वाके गरे, विजय बिभूषत आय ॥

(४०)

भूलि चण्ड - विक्रम गये, तुम अबही नरनाह।
सुरगन समर हराय कै, कालि पुजाई वाहँ ॥

(४१)

खाय कुलिस को घाय हिय, नेकु न लाई सक।
लूटि लई अमरावती, करत कछुक भुव वक ॥

(४२)

सो तुम या विधि या समै, साहस खोये देत।
कहँ तुच्छ असगुन जगत, बनत निरासा हेत ॥

(४३)

करौ मन्त्र - बल सौं अबहिं, हय-मख देहुँ पुराय।
सुरग - सिंहासन पै तुमहि, तप-बल देहुँ चढाय ॥

(४४)

कहौ ताप दै तुव अरिन, जारि करौं सब छार ।
कहौ दौरि अबहीं गहौं, भावौं हूँ के बार ॥

(४५)

कै कर में करवाल गहि, कै निज धनु-सर धारि ।
करौं अन्त बैरिन सबनि, आयुध दिव्य प्रहारि ॥"

(४६)

लखत असुर-गुरु के नृपति, या विधि रातै नैन ।
चरन परसि अति मोद सों, बोल्यो मंजुल बैन ॥

(४७)

"भागिन सों राउर सरिस, मिले गुरू महराज ।
दैत्य-बंस या लगि भयो, परम समुन्नत आज ॥

(४८)

धरिय धीर गुरुवर अबहि, हौं नहि होत निरास ।
राउर सुभ आसिष जबै, रहत सदा मम पास ॥

(४९)

दैत्यबंस को सुजस अब, पूरि रहै नभ माहिं ।
ताप नाप को सुनहु गुरु रह्यौ नाम कछु नाहिं ॥'

(५०)

कह गुरु "सुन मन कानन मैं नेकु न धरिय विलम्ब ।
स्यामकरन हय पूजिए, भजो हरे जगदम्ब ।'

(५१)

हयशाला सों तब नृप, स्यामकरन मँगवाय ।
गुरु आयसु सों पूजि सब, तापै पूज्यो जाय ॥

(५२)

[illegible] नानाकृति [illegible] ।
[illegible] ॥

(५३)

वन्दि असुर-गुरु-चरन जुग परसि जनक के पायँ।
मख-हय करि आगे चल्यो, बानासुर हरखाय ॥

(५४)

बलि-पुर ते या बिधि चल्यौ, दरपति असुर-समूह।
चतुरानन - मुखते कढ़ै, जथा अमित स्रुति-जूह ॥

(५५)

पूरब, उत्तर, पच्छिम दिसि, अनायास ही जीति।
गमन्यो हय दच्छिन दिसा, हिय उपजी कछु भीति ॥

(५६)

उठी कनौटी बाजि की, आगे देत न पाँय।
पै वाहक पुचकारिकै, तेहि लै चले लिवाय ॥

(५७)

चलत चलत जन-थान मैं, मख-हय पहूँचो जाय।
कछु सैनिक वलि घोषना, या विधि रहे सुनाय ॥

(५८)

"दैत्य-वंस-अवतंस वलि, भूपति कौ मख-बाजि।
जो याको पकरै कोऊ, तुरत करै रन साजि ॥"

(५९)

आयो वारिद-नाद संग, वा दिन अछयकुमार।
देखन कौ जनथान कौ, अपनो स्कन्धावार ॥

(६०)

वीरन के बलकत वचन, सुनत भये दृग लाल।
फरकि उठे भुजदण्ड दोउ, बोल्यौ चर सौं बाल ॥

(६१)

"देखौ इनकी मूढ़ता, मारत वढि वढि वात।
नहिं जानत जस जनक कौ, जो त्रिभुवन विख्यात ॥

(६२)

देहु अवहिं यहि अस्व कहँ, हय-साला पहुँचाय।
याहि छुडावन को सवै, सोचहिं असुर उपाय॥

(६३)

लावहु मेरो चण्ड धनु, अरु तुनीर करवाल।
मै देखहुँ अरि-दल-वलहिं, वलकि कह्यो इमि वाल॥

(६४)

चर लै वा हय कौ गयो, अरु लायो सर चाप।
निसित विसिष छोडन लग्यो, अछयकुँवर करि दाप॥

(६५)

दैत चमू चतुरंगिनिहि, पलक माहिं इमि काटि।
रुण्ड मुण्ड सो -वाल नै, दीन्ही वसुधा पाटि॥

(६६)

दिग्गज इव चिग्घरत इभ, जिनके कटत भसुंड।
अरु धरु धरु मारहु कहत, उठि उठि धावत रुंड॥

(६७)

या विधि सो निज सैन को, निरदय निधन निहारि।
रथ चढि वानासुर चल्यौ, सायक चाप संभारि॥

(६८)

तौ लगि असुर-समूह सव, नृप-सुत कौ वल पाय।
चहुँ दिसि अछयकुमार कहँ, घेरि लियो तिन आय॥

(६९)

तेहि पै निज वीरन निरखि, डारत अस्त्र-सँघात।
वानासुर तिनसो कह्यौ, कर उठाय यह वात॥

(७०)

"काल जेठ, रन कुसल तुम, अवै निगे यह वाल।
तुम हय गज रथ पै चढे, यह पदाति वेहाल॥

(५३)

वन्दि असुर-गुरु-चरन जुग परसि जनक के पायँ।
मख-हय करि आगे चल्यौ, बानासुर हरखाय ॥

(५४)

वलि-पुर ते या बिधि चर्‍यो, दरपति असुर-समूह।
चतुरानन - मुखते कढै, जथा अमित स्तुति-जूह ॥

(५५)

पूरव, उत्तर, पच्छिम दिसि, अनायास ही जीति।
गमन्यो हय दच्छिन दिसा, हिय उपजी कछु भीति ॥

(५६)

उठी कनौटी वाजि की, आगे देत न पाँय।
पै वाहक पुचकारिकै, तेहि लै चले लिवाय ॥

(५७)

चलत चलत जन-थान मैं, मख-हय पहुँचो जाय।
कछु सैनिक वलि घोषना, या विधि रहे सुनाय ॥

(५८)

"दैत्य-वस-अवतस वलि, भूपति को मख-बाजि।
जो याको पकरै कोऊ, तुरत करै रन साजि ॥"

(५९)

आयो वारिद-नाद सग, वा दिन अच्छयकुमार।
देखन को जनथान को, अपनो स्कन्धावार ॥

(६०)

वीरन के वलकत वचन, सुनत भये दृग लाल।
फरकि उठे भुजदण्ड दोउ, वोल्यौ चर सौं वाल ॥

(६१)

"देखो इनकी मूढ़ता, मारत वढि वढि वात।
नहि जानत जस जनक को, जो त्रिभुवन विख्यात ॥

(६२)

देहु अबहिं यहि अस्व कहँ, हय-साला पहुँचाय।
याहि छुडावन को सबै, सोचहिं असुर उपाय ॥

(६३)

लावहु मेरो चण्ड धनु, अरु तुनीर करबाल।
मैं देखहुँ अरि-दल-बलहि, बलकि कह्यौ इमि बाल ॥

(६४)

चर लै वा हय कौ गयो, अरु लायो सर चाप।
निसित बिसिष छोडन लग्यौ, अछयकुँवर करि दाप ॥

(६५)

दैत चमू चतुरंगिनिहि, पलक माहि इमि काटि।
रुण्ड मुण्ड सो -बाल नै, दीन्ही बसुधा पाटि ॥

(६६)

दिग्गज इव चिग्घरत इभ, जिनके कटत भसुड।
अरु धरु धरु मारहु कहत, उठि उठि धावत रुंड ॥

(६७)

या विधि सो निज सैन को, निरदय निधन निहारि।
रथ चढि बानासुर चल्यौ, सायक चाप सँभारि ॥

(६८)

तौ लगि असुर-समूह सब, नृप-सुत कौ बल पाय।
चहुँ दिसि अछयकुमार कहँ, घेरि लियो तिन आय ॥

(६९)

तेहि पै निज बीरन निरखि, डारत अस्त्र-सँघात।
बानासुर तिनसो कह्यौ, कर उठाय यह बात ॥

(७०)

"काल जेठ, रन कुसल तुम, अबै निरो यह बाल।
तुम हय गज रथ पै चढ़े, यह पदाति बेहाल ॥

(७१)

तुम सब धारत कवच यह, पहिरो दिव्य दुकूल ।
कुलिस कलेवर तुम सबै, पै याको तनु फूल ॥

(७२)

तुम सब मिलि बाँधन चहत, या बालक कौं आज ।
धिक धिक या बल पै तुम्हे आवत नेकु न लाज ॥"

(७३)

दैतन सौं या विधि घिरयौ, अछयकुमार निहारि ।
दौरि एक राकस गयो, जहाँ रह्यौ सक्रारि ॥

(७४)

बोलेउ "इत आयउ हुतो, कोउ नरपति-मख-बाजि ।
अरु ताके पीछे रहे, सुभट - समूह बिराजि ॥

(७५)

क्रोधित अछयकुमार नैं, वा हय कौ गहि लीन ।
अरु अकिले तिन सामुहे, महा घोर रन कीन ॥

(७६)

घेरि लियो बालहिं अबै, सकल असुर - समुदाय ।
चलिके तिन्हैं सहारि प्रभु, लोजै बन्धु छुराय ॥"

(७७)

सुनि चर-मुख अजगुत-बचन, हिये न रंच विषाद ।
धनु-सर तुरत सँभारि कै, गवन्यो वारिद-नाद ॥

(७८)

सेन साजि चाह्यो चलन, खरदूषन रन माँहि ।
पै रोक्यो घननाद कहि, 'काम कछू उत नाहि ॥"

(७९)

यह कहि निज धनु-मेघ सौं, बरसावत सर-धार ।
इन्द्रजीत गरजत चल्यो, आवत लगी न बार ॥

(८०)

बोल्यो अच्छयकुमार सौं, "जनि डरपौ हिय बाल।
आय गयो रनभूमि मैं, दैत्यबस को काल॥"

(८१)

अस कहि पुनि पढ़ि मंत्र कौ, मोहन बान चलाय।
मोहि मोहि असुरन सबनि, महि पै दीन गिराय॥

(८२)

कह बानासुर "सैनकनि, वृथा करत सहार।
रथ चढ़ि आवौ बेगि रन, होय हमार तुम्हार॥"

(८३)

मेघनाद बोल्यौ बिहँसि, "कहा सेन की बात।
हौं पदाति कीजै सपदि, मोपै अस्त्र अघात॥

(८४)

सो सुनि बानासुर तुरत, रथ सो महि पै आय।
'पहिले करो प्रहार तुम', इमि बोल्यौ मुसकाय॥

(८५)

तौ लगि रबिरथ बेग सौं, पच्छिम पहुँचो जाय।
दच्छिन दिसि सो अपर रबि, आवत परयौ लखाय॥

(८६)

घरघरान धुनि घोर अति, परी दुहुन के कान।
मेघनाद हरख्यौ निरखि, बानासुर सकुचान॥

(८७)

पल मारत ही अवनि पैं, उतरयो आय विमानु।
दसकन्धर दीस्यो मनहुँ, तपत दूसरो भानु॥

(८८)

परसि चरन पितु के मुदित, मेघनाद कर जोरि।
भाख्यो समर-प्रसग सब, गिरा अमिय रस घोरि॥

(८९)

"अस्वमेध मख करत है, कोऊ वलि महिपाल।
हय-रच्छक बनि कै इतै, आयो वाको बाल॥

(९०)

सो मोसौ रन करन की, कहत बात करि रोष।
आयसु दीजै बीर को, करौं समर - परितोष॥"

(९१)

विहँसि कह्यौ लकेस तव, "भई राति अब तात।
वहुरि इतै रन मडियो, दोऊ आय प्रभात॥

(९२)

रन-कौसल दोहून को, हौंहूँ लखिहौं आय।
करौ निसा विस्राम दोउ, निज निज सिबिरनि जाय॥"

(९३)

अस कहि दोऊ सुतन कहँ, पुहुप - विमान चढाय।
निज कन्धावर को गयो, दसकन्धर हरखाय॥

(९४)

रवि अथवत लखि पछिम दिसि, दैत्य-चमू पलटाय।
आयौ अपने सिविर को, वानासुर हरखाय॥

(९५)

अस्त्र सनाह उतारि कै, करि भोजन विसराम।
रन-मग्रन लाग्यो करन, निसि वीती एक जाम॥

(९६)

रवि-रथ-द्रुतगामी वहुरि, पायक एक वुलाय।
रन को सकल हवाल लिखि, पितु ढिग दीन पठाय॥

(९७)

वहुरि जाय प्रति सिविर महँ, देखे सब वर वीर।
निसि रच्छा सौंप्यौ चरनि, पुनि लौटचौ रन-धीर॥

(९८)

इत चर लै रन-पत्रिका, वलि पै पहुँच्यो आय ।
सुनत मुदित मन ताहि नृप, लीन्हो निकट बुलाय ॥

(९९)

दूरिहि तें नृप कँह निरखि, दूत नाय पद माथ ।
दीन्हो सुत रन - पत्रिका, लीन्ही कर नर-नाथ ॥

(१००)

यौ रन कौ लहि कै समाचार,
सँतोष महीपति कौ कछु आयो ।
पै अनचीती गुनें हिय मैं,
बिसराम न नेंकौ धराधिप पायो ।
छीक की त्यौं सुधि कै दहल्यौ,
औ अवेगनि कौ मन माँहि दबायो ।
आहुति देति रह्यौ पहले जिमि,
सक सों भूरि भर्यो दुचितायो ॥

(१२)

जबै खेलन को मुनि-बालन के सँग,
सो विच कानन जायो करै।
मतवारे मतंगनि की गहि सुण्डनि,
कौतुक ही वह धायो करै।
दसनावली को गिनै बाघन की,
चढिकै तिन्है कौहूँ चलायो करै।
पय पीवत सिंहिनी को सिसु खैंचि,
कबौं बल सौं गहि लायो करै॥

(१३)

कीन्ह्यौ पिता सुत को उपवीत,
औ मंत्रनि की विधि आपु बताई।
त्यो प्रतिभा की लखे खनि बाल को,
विद्या सदासिव आय पढाई।
साम को गान सिख्यौ सुर सौ,
कविता को पढ्यो रुचि कै अधिकाई।
सास्त्र अगाध महोदधि को,
तरिवे महँ वामन वार न लाई॥

(१४)

बीनैं गहैं सुर सुन्दरी त्यो,
कुसुमावली टूटैं मँदारनि दाम की।
बावरी कोऊ इनी वनि जाय,
नही रहि जाय तिया कोऊ काम की।
कँमेहु मानै मनाये नही,
बिसरै सुधिहू बुधि यो सुर-वाम की।
तुंग तरंगें उठैं हिय-सिन्धु में,
गावन लागे रिचा जबै साम की॥

(१५)

कजरा दृग एक ही दीन्हें कोऊ,
कोऊ केस-कलाप सजावत आवै ।
पग एक ही मे कोऊ जावक दै,
वसुधा अरुनारी वनावत आवै ।
गयो छोर छरा कौ हिराय कहूँ,
तिया सारी सुरग दबावत आवै ।
कर-कज में तागरी टूटी लिये,
मोतिया महि पै वगरावत आवै ॥

(१६)

सोचो करै मन ही मन मातु,
विषाद की रेख न पै मुख लावत ।
देव-पराभव को परिताप,
अवाँ सम बाम कौ हीय जरावत ।
पूँछे जवै सुत कारन कौ,
तेहि वातन मै हँसिकै वहरावत ।
वामन के समुहे कवौं इन्द्र-
पराजय की चरचा न चलावत ॥

(१७)

पौढि रही सुत के सँग मातु,
गई रतिया तऊ आँखि न लागी ।
सोचत ही सुरनायक की,
विपदा कौ तिया सिगरी निसि जागी ।
मातु को आयो हियो भरि सोक मो,
लागी कहै वतियाँ दुख पागी ।
सो सुनि वामन की निदिया,
तजि लोचन को तुरतै कहूँ भागी ॥

(१८)

अँखियाँ खुली बालक की लखिकै,
तेहि मातु लगी कर फेरि सुआवन।
हियरा कौ अवेग दबायकै कैसेहु,
बातन ही में लगी बहरावन।
बहिकै अँसुवानि की धार तऊ,
सबै हीतल को लगी भेद बतावन।
जननी-मुखचन्द्र मलीन लखे,
सहसा तब बोलि उठे इमि बावन।।

(१९)

"कारन याको कहौ न कछू,
निसि मैं तुम्हे आजु जो नींद न आई।
कौन धौं अंग में व्यापी विथा,
पट गीलो कियो अँसुआ बरसाई।
जागत हौं ही रह्यौ कब को
बतियाँ हू सुनी कछू याद ना आई।
आपने सोग को कारन मातु!
मया करि मोपै कहौ समुझाई।।

(२०

जौ लगि हे जननी! तव दुख को,
हेतु जथारथ जानि न लैहौं।
कौनहू भाँति कहाँ लौं कहौं,
हिय में कहूँ नैसुक चैन न पैहौं।
काज करौं नहि देहौं कछू,
पलका तें तुम्हें उठि जान न दैहौं।
सौंह बबा की निहारी करौं,
तब लौं मुख नैकहू अन्न न खैहौं।।

(२१)

पूत कौ या विधि सौं अनुरोध,
लखे जननी हिय मैं हरखानी।
पै सुत सामुहे सो सहसा,
न वखानि सकी करुना की कहानी।
आयो गरो भरि अम्वुज-सी-
अँखियानि वह्यो तरराय कै पानी।
ही कौ अवेग दवाय सवै,
निज सूनु सो मातु कही मृदु वानी॥

(२२)

"हे सुत! रावरो आनन हेरि,
रही अवलौं हम सोक भुलाये।
वाडव-सी वह दुःख की आगि,
रही हिय कन्दरा माहि दवाये।
भूलि हू नाही कवौ तुम्हरे,
समुहे हम लोचन वारि वहाये।
पै दृढ सौंह सुने तुम्हरी,
अव कैसेहु वात वनै न वनाये॥

(२३)

वा जननी के हिये की विथा,
इमि लालन! पूछत हौ हठ धारे।
जासु के सूनु-सरोज-वनै,
अरि कै अरिनै करि लौं मथि डारे।
है सुत-सोक के सिन्धु परी,
वहियाँ गहिकै तेहि कौन उवारै।
आस कै राखी किती तुम सो,
पै अहो तुम हूँ अवै वालक वारे॥"

(२४)

"कैसे परी सुत-सोक के सिन्धु,
जो बामन जीवत बाल हूँ तेरो।
हैं लघु बालक पैं करौं, तेज-
निधाननि को वय जात न हेरो।
एक ही सोम-कला सो लखौ,
सिगरो तम-तोम हटै जग केरो।
का तुव सत्रु-समूह विनास,
सकै करि क्रोध कृसानु न मेरो॥"

(२५)

धीरज लाय हिये महँ मातु,
कह्यौ सुत सौं भरि नैननि वारी।
बीती नहीं बरसैं तुव बन्धु,
रह्यौ अमरावती कौ अधिकारी।
भाल सो जाके अदेसनि कौ,
सबै देव रहे निज सीस पै धारी।
और कहा कहौं जासु सनेह कौ,
मानत आपु रहे त्रिपुरारी॥

(२६)

अमरावती के वर वैभव की कथा,
हे सुत! मोपै बताय न आवत।
कुटिया में रहौ परी तोहि लिये,
सो बतावत मोहि सकोच हूँ आवत।
तुम्हरे अनुरोध कौ मानिकै पूत!
न चाहै जियो तऊ तोहि सुनावत।
हतभागिनी मातु को कीजो छमा,
अबलौं रही सारो प्रसंग दुरावत।

(२७)

तुम्हरे पितु की रही दूजी तिया दिति,
जाके तनै अतिसै बल-धारी।
फिरवाय दुहाई दई जगमाँहि,
नरायन कौ रन माँहि प्रचारी।
वर बन्धु तुम्हारे लरे तिनसों,
पै गये छन माहि सबै विधि हारी।
वह दैतनि की चतुरंग चमू,
अमरावती लूटन कौ पगुधारी॥

(२८)

हौं हू हुती अमरावती वा दिन,
देवन की दुरभागि ह्वी जागी।
आवन दैत-चमू कौ सुनै,
अवलानि की वा निसि आँखि न लागी।
कारो पटम्बर जौ लौं समेटि कै,
ह्वै भयभीत विभावरी भागी।
तौ लगि दैतनि वाहिनी कोपि,
लगाय दई दिसि पूरव आगी॥

(२९)

पै नही ज्वाल की माला वढी,
गृनि कै कहूँ पूरव नेह घनेरो।
कै करि छोभ तियागन पै,
अथवा लै सँकेत जलाधिप केरो।
या विधि सौं जबै आसुरी सैन ने,
आपने व्यर्थ प्रयास कौ हेरो।
मत्त-मतगज-कुम्भ की चोट सो,
तोरि कपाट दियो पुर केरो॥

(३०)

जमघार-सी आवत सैन निहारि,
भईं भयभीत तिया बिलखानी।
निज अंक सिसून कौ लै गमनी,
किती अंतर-गेह में जाय लुकानी।
किती नन्दन कानन भागि गईं,
मति मूढ भई किती गैल भुलानी।
तिन रूँधि दियो जल-मारग कौ,
रहि याते गयो अँखियानि में पानी॥

(३१)

काल की मूरति वा रदवक्र कौ,
देख्यो प्रचण्ड त्रिसूल घुमावत।
वारिद-नाद कै बार ही बार,
धरा कौ चलै बरबंड नवावत।
कंदरा सौ मुख बाये कढे रद,
खङ्ग-सी वा रसना लपकावत।
चन्द्र ग्रसै जिमि राहु चलै,
तिमि सौध के द्वार लख्यो तेहि आवत॥

(३२)

एक ही चण्ड गदा के प्रहार सों,
सो सठ सौध-कपाट को तोरी।
त्यों सुरचाप सी तोरन-द्वार की,
वन्दनिवारनि को झकझोरी।
आय भयो अँगना में खडो,
मनि-खम्भनि सों सिर आपनो फोरी।
वा मम कौनिक दैत लखे,
घबराय गई महमा मति मोरी॥

(३३)

चारु दुकूलनि त्यागि सची,
तन पै पहरी एक कारिये सारी।
कंकन किंकिनी नूपुर औ-
पदकंज सौं पैंजनियानि उतारी।
दासिन में दुरि के भगी वाम,
जयन्त पै कातर दीठि कौ डारी।
धीरज नेकौ न धारि सकी,
अमरावती-नाथ सुरेस की नारी।

(३४)

कान कै वाल चला-चली की धुनि,
त्यागि दियो तुरतै तिन सोवन।
वैठि गयो सिजिया पै ससक ह्वै,
मूक लौं लाग्यौ इतै-उतै जोवन।
"मइया गई कहाँ" यों कहिकै,
दृग-वारि सौं लाग्यो कपोलनि धोवन।
हारी मनाय न मान्यो कछू,
विलखाय लग्यो हिचकीनि लै रोवन॥

(३५)

सौध पै आवत दैतन को सुनि,
साहस ही को चल्यो मनो त्यागी।
त्यौं अवला घवराय विहाल ह्वै,
चेतनाहीन परी भयपागी।
मोंहि न सूझ्यो उपाय कोऊ,
तहाँ पीपर-पात लौं काँपन लागी।
ता समै हीय पै पाहन पारि,
जयन्त को गोद लिये लिये भागी॥

(३६)

दौरत दौरत या विधि सौं सुत !,
हाँफि गई उतरे ते अटारी।
धायहू धाय कै आय गई,
"जननी जननी" किती बार पुकारी।
सो सुनि लौटि परयौ रदवक्र,
पै मोहि गई कछु दूरि निहारी।
घूमि प्रसून सौं सूनु पै कोपि,
चलाइ दई खल खैंचि कटारी॥

(३७)

व्यालिनी-सी तेहि आवत देखिकै,
ऐसी कछूक गई घबराई।
त्यागि कै दूजी दिसा भगिबो,
भ्रमि भूलि के तासु के सामुहे आई।
पै अब बालै बचावन कौ,
अपनो दियो दाहिनो हाथ बढाई।
मूठि लौं वा निरदै की कटार,
सो हाय गई कर माँहि समाई॥

(३८)

घूमि गई अँखियाँ बह्यौ सोनित,
ह्वै कै अचेत परी महि माँही।
सींचन कौ जल पै न मिल्यौ,
अबलानि दियो करि अंचल छाँही।
बाढै बिथा या कथा कहतै सुत,
याते मैं छेप कह्यो तोहि पाहीं।
पूरि गयो तन को वह घाव,
पै घाव भरयो मन को अबै नाहीं॥

(३९)

जा समै सूनु पुलोमजा सौंर सौं,
दासिन के सँग मैं दुरि भागी।
दीप-सिखा-सी प्रभा तनु वाम की,
वा पट स्याम मैं और हू जागी।
आनन सोम सौं पै न दुर्यौ,
चली भीर मलिन्दनि की अनुरागी।
त्यौंही मँदारनि की कलिका,
अलकावली सौं बिथुरैं महि लागी॥

(४०)

आँगुरी सौं गिरी सो मुँदरी,
रह्यौ जा महँ अंकित नाम सुरेस कौ।
ताहि लई इक दैंत उठाय,—
औ धाय लै जाय दई असुरेस कौ।
सो हरख्यो हिये बाँचि कै नाम,
प्रमोद भरे तेहि दीन निदेस कौ।
धाय धरौ वह वाम सुरेस की,
भागि न जाय लखौ तिय वेष कौ॥

(४१)

स्वामि की आयसु कौ धरि सीस,
चल्यौ सो सुरारि करी नहिं दाया।
धाय धरी दुखिया सची कौ,
लखिकै वर वाम की कंचन काया।
दासी सबै भहराय भगीं,
अवलोकहु वा दुरदैव की माया।
दैंतन के बस मैं परी जाय,
पुलोम की जाई सुरेस की जाया॥

(४२)

लै गयौ मोहि पुलोमजा-सग,
दिखावत दैत बड़ी बड़ी आँखी।
त्रासत जात जयन्त कौ मूढ़,
किते कटु बैननि कौ मुख भाखी।
मारग में मिले नारद आय,
निषेध कियो तिनने मन माखी।
त्यौ तिनको इमि आयसु मानि,
बृहस्पति के गृह में हमें राखी॥

(४३)

कैसे कहौं बिपदा सुरनाथ की,
राज ही छूटि गयौ जिहि केरो।
औ तेहि के सँग का कहौं सूनु !
गयो लुटि हाय सबै सुख मेरो।
देव अदेव सौं पूजन जोग,
हहा भटकै वन वन्धु सो तेरो।
द्यौस के ज्यौं अवसान भये,
बिछुरो खग ढूँढत साँझ बसेरो॥

(४४)

जा पद-पकज पै परिवे को,
सबै दिगपाल महेस मनावत।
जासु के भौंह मरोरत ही,
वै प्रलै के पयोद घने घिरि आवत।
दैतन को भय मानिकै ताहि,
न हाय कोऊ गृह माहि छिपावत।
भाग की वा करतूनि लखौ,
नाहि जानें कहाँ परो द्यौस बितावत॥

(४५)

फेन - सी सेज पै पौढि समोद,
विभावरी जो नित मोय वितावत ।
प्रात ही जाहि प्रवोधन काज,
अनन्द सों किन्नर वीन वजावत ।
जा वर वस प्रससित्रै को,
विरुदावली चारन चाय सो गावत ।
सो मही सोय सिवा के विलापनि,
हाय सुनै निदियाहि भगावत ।

(४६)

जा पद-पीठ पै भामिनी-मौलि,
मँदारनि की परै घूरि अथोरी ।
त्यौं - सुर - सीस - किरीट प्रभा,
नख की प्रभा सौं उरझै वरजोरी ।
सो सुत हाय पयादहि पाँय,
फिरै वन मैं निज गात सिकोरी ।
तापस और कुरंगनि नै,
मिलि कै लई जासु कुसानि को तोरी ॥

(४७)

तौपै लगाइ कै आस खरी सुत !
आजु लौ जीवन को रही धारी ।
औ पद सेवन को तुम्हरे—
पितु के विरधापन तासु विचारी ।
देखिवे कौ अव है घौ कहा,
दुरदैव गयो सुधि भूलि हमारी ।
फाटै नही वसुधा न समाउँ,
सुरेस भो वालक मैं महतारी ॥

(४८)

है बड़े बन्धु विहगमराज—
तेऊ नेहि अवसर काम न आये ।
त्यों हरि को मुखिया करिकै,
निज वंस को बैर न आपु मिटाये ।
बन्धुन को समुझायो नहीं,
रन के न बुरे परिनाम जताये ।
भाग ही जो पै भयो विपरीत,
तो कैसे बनै कोऊ बात बनाये ॥

(४९)

श्री सिवसंकर हैं भगिनी-पति,
दच्छ प्रजापति हैं पितु मेरे ।
हैं हरि सौति - तनै के सखा,
चतुरानन राखत नेह घनेरे ।
ज्ञान निगूढ़ विचारिबे को,
मुनि-मंडली तो पितु को रहै घेरे ।
पै इमि वंस-विरोध बढ़े,
समुझावन कोउ न आवत नेरे ॥"

(५०)

यों कहि कै अदिती भई मौन,
लगी दृग सों अँसुआ बरसावन ।
औ तेहि धार में आपने पूत को,
धीरज हू लगी वाम बहावन ।
रोकि अवेग खरो हिय को,
बरुनीनि में लोचन वारि को आवन ।
मातु को बेगि प्रबोधन काज,
कहै लगे मंजुल बैन यों बावन ॥

(५१)

"हे जननी ! कोऊ या जग माँहि,
विधान सकै विधि को नहि टारी ।
या लगि दैतनि के समुहे,
रन-भूमि मैं हारि गयो असुरारी ।
काल कुचाल की चालनि को,
तनि तौ मन लीजिए आपु विचारी ।
रोकतो कौन तिन्हें रन मैं,
जे पहारनि के दिये पख विदारी ॥

(५२)

गति रावरी मातु सुरेस के साथ,
अवाध हुती पहले हू उतै ।
निहचै सुर-वृन्द-विजै सौं वहोरि,
सो होयगी काल कछूक वितै ।
रथ-चक्र के नेमि फिरै तर ऊपर,
ज्यौं मग मैं चलिवे के हितै ।
क्रम काल को लै जग त्यौं नर की,
फिरिवो करै भाग की रेखा नितै ॥

(५३)

कादर मातु न जानिए मोहि,
न दैतन को लखिकै हिय हारौं ।
आयसु होय तौ जाय अबै,
असुराधिप को रन माहि प्रचारौं ।
त्यौंहा वडे वडे दैतन के,
गहि के अवही कहौं सीस उपारौं ।
कै निज क्रोध-कृसानु मैं आजु,
जराय कै छार तिन्है करि डारौं ॥

(५४)

तोरि धरौं दिगदन्तिन-दन्त,
कहौ भुज ठोकि सुमेर हलाऊँ।
सारे सुरारि-समूहनि कौ,
अवहीं रन-अगन में विचलाऊँ।
रावरो आयसु पाऊँ जु पै,
वपुरा वलि कौ अवै वाँधि लै आऊँ।
जौ न करो इतो कारज तौ,
तोहि लौटि न आनन मातु दिखाऊँ॥"

(५५)

वामन के सुनिके इमि वैन,
कछू अदिती मन में सकुचानी।
है यह ईस को अंस विसेष,
सवै कछु सो करिहै इमि जानी।
पै गुनि वंस-विनास की वात,
तिया अपने मन माँहि लजानी।
त्यागिकै रोष अवेग सवै,
सुत सौं इमि वोली गिरा रस-सानी।

(५६)

"धन्य भई जगती - तल मै,
प्रिय वामन! तो सौं सपूतहि जायकै
कीजिए वंस - विरोध नहीं,
तिन पै न वजागिनि डारो रिसायकै।
वैरी भयै तौ कहाँ भये लालन,
जो जनमें तुम्हरे कुल आयकै।
लीजै कलंक न वंस-विनास कौ,
वा पितु के लघु पूत कहायकै॥

(५७)

हौ सुत आपु सनेह के सिन्धु,
सोई उपदेश दया करि दीजै ।
वस-विरोध मिटै जेहि सौं,
रन-खेतन में कोऊ वन्धु न छीजै ।
जाइए आपु अबै बलि पै,
बतियानि ही सौं हिय वाको पतीजै ।
सामुहे मेरे मया करिकै,
तिन्है जारिबे को अब नाम न लीजै ।।

(५८)

है जननी को हियो हमरो,
सुत के अपराध गिने नहि जाही ।
होन न पावै बुरो उनको,
यहि ते समुझावति हौं तुम काही ।
त्यों बदलो अपकारनि को,
उपकारनि सों करिए जग माही ।
पूत कुपूत बनै तौ बनै,
तऊ मातु कुमातु बनै कबौं नाही ।।

(५९)

पहले सुत जैसे बनै तुम सों,
निज बन्धुनि को मिलिके समझावौ ।
अमरावती सो असुरेसन के,
अनाचारनि को वस अंत करावौ ।
मनभावतो एतो करो हमरो,
निज बंधुनि को पुनि कंठ लगावौ ।
इतनै पै जु पै हठ त्यागैं नहीं,
तब आपु करौ अपनो मनभावो ।।"

(६०)

सुनत अदिति-वैन पावन परम लागे,
वामन कहन होत प्रात ही सिधैहों मैं ।
मानि तव आयसु त्रिसारि सब वैरभाव,
मातु ! बलिराज पै अवसि चलि जैहों मैं ।
जो पै होत भावतो न देखिहो तिहारो अम्ब !
बाँधि दैत नृपहि तिहारी मोंह लैहों मैं ।
दैहों दुख दाव दरि सब असुरारिन के,
कस्यप को तबहि सपूत कहवैहों मैं ॥

एकादश सर्ग

रूपमाला

(१)

गन्धवाहन सीत मन्द सुगन्ध गति सौ आय ।
बहन लाग्यो गगन पथ में नवल छवि सरसाय ॥
त्यौं जटित नखतावली सौ स्याम पटहि सँभारि ।
भौन गौनी जामिनी नव कामिनी अनुहारि ॥

(२)

गगन-गगा को सरोरुह लग्यो कछु सकुचान ।
भामिनी ज्यौ देखिकै निज सौति की मुसकान ॥
निरखि सिन्दूर-विन्दु को प्राची दिसा के भाल ।
परौ पीरो सोक सो ससि कोप सो पुनि लाल ॥

(३)

तोरि डारो रोष सो मुकतानि की हिय माल ।
ते परी महि आयकै मिसु ओस-सीकर-जाल ॥
लसत ये अथवा परे कोउ प्रोषिता के आंसु ।
अवधि बीते हू न आयो दूरि सौ प्रिय जासु ॥

(४)

हेमकूट - किरीट हू पै धारि जो निज पांय ।
सिन्धुजा - पति - धाम-मध्यम मांहि पहुँचो जाय ॥
गिरत ह्वै छवि छीन विधु नभ मो कहत जनु जात ।
अथिर है वैभव जगत को छिनक में विनसात ॥

(५)

उदित प्राची दिसि दिवाकर अस्त भो निसिराज ।
विसद-घटा-युत-दुरद-छवि धरत जनु नग आज ॥
किधौ बीचिन काढि बाडव अबु-निधि तें दीन ।
दिग-बधू कर - रजु - कनक-घट सिन्धु सों भरि लीन ॥

(६)

निसा-बिरहिन-नलिन-नैननि-आँसु पोछन काज ।
अरुन इमि प्राची दिसा में लस्यो नव दिन-राज ॥
तासु मारग घन-पटल मधि जबहि रोकत आय ।
होत रातो जनु हिये निज रोष को दरसाय ॥

(७)

चली चकई पिय मिलन को अति उछाह बढाय ।
विहग-गन कल कूजि चहुं दिसि रहे गान सुनाय ॥
दुख्यो सजोगिन हियो, प्राची दिसा तेहि काल ।
पियो बिरहिन को रुधिर याते कियो मुख लाल ॥

(८)

सरद-चंद-मरीचि-रोचिष जटा-पटलनि धारि ।
तडित-मडित-अम्बु-वाहन की मनो अनुहारि ॥
लोक - उत्तर - देह - आभा अमित - तेज - निकाय ।
अपरिचित तपसिनहु के हिय रह्यो प्रेम जगाय ॥

(९)

अतिहि सरल स्वभाव सों बिसवास जनु उपजाय ।
हरत हीय मुनीन को निज मधुर बैन सुनाय ॥
लसत तहँ मुनि-मण्डली-मधि-सप्तर्षिपितु यहि भाँति ।
घेरि मानहुँ सीतकर को रही नखतनि पाँति ॥

(१०)

वदिका पै लसत मुनिवर हरिन-अजिन बिछाय ।
स्रङ्ग पै कैलास के सोहत मनौ हर आय ॥
कै लसत पन्नग-दुवन के पीठ हरि पग धारि ।
पद्म पै जिमि पद्म-आसन पद्मआसन मारि ॥

(११)

जायकै पितु निकट वामन प्रनतभाव दिखाय ।
बाल-इन्दु-लिलार अपनो जनक के पद नाय ॥
पाय तासु असीस अरु सकेत को हरखाय ।
बिछी खाल कुरग की तेहि पै विराजो जाय ॥

(१२)

पुनि सनाल सरोज सो दोऊ करनि को जोरि ।
कहन लाग्यो बैन पितु सों अमिय रस में घोरि ॥
"बाल की बाचालता गुरु सामुहे अपमान ।
विस्व जिनके हेतु कर-गत-वदर को उपमान ॥

(१३)

तऊ जननी की विथा अत्र विवस मोहि बनाय ।
कहत वरवस रावरे ढिग इमि निवेदो आय ॥
दीन्ह मातु अदेस मो कहँ अवहि वलि पै जाय ।
सन्धि बन्धुनि में करावौं असुरगन समुझाय ॥

(१४)

परत निसि नहि नींद मातुहि वस-बैर विचारि ।
रहति सर-सफरी सरिस, गो सूखि जाको वारि ॥
तासु को मुख मलिन लखिकै मोहि न आवत चैन ।

(१५)

भयो दच्छ प्रजेस निसिपति फिरत नभ निसंक।
कहहु यहि जग राजमद ने केहि ने दीन कलंक॥
कठिन अतिसै होत है जग राज को मद तात।
प्रबल बलि केहि भाँति करिहै सधि की अब बात॥

(१६)

छाँडि हैं अमरावती क्यों सक्र को पद पाय।
नहुष कबहूँ अंक-गत-कमलाहि सकत बिहाय॥
इन्द्र-आसन-तजन की अब बात तौ है दूरि।
सची सौ वह चहत सेवा यों रह्यो मद पूरि॥

(१७)

जीति रन बल-दर्प सों ते करत जो मन माँहि।
कानि काहू भाँति अब हैं देत मानत नाँहि॥
दीजिए मोको मया करि सोइ मार्ग बताय।
जासु पै पग धरत ही मम मातु को दुख जाय"॥

(१८)

कह्यौ कस्यप "है अपूरब जगत का व्यापार।
फँसत यामें लोग जे ते परत मनु सरिधार॥
आजु लौं कोऊ गृही यहि गयो पैरि न पार।
त्यागि बैठ्यो गेह को तौऊ नहीं निस्तार॥

(१९)

चहत जे वर विभव कीरति और सुजस अपार।
करैं ते परिजननि के प्रति सदा सम व्यवहार॥
रहत याको ध्यान पै मुनि जन हिये सविसेखि।
होत दैतनि पै दया सुरगन कुटिलता देखि॥

(२०)

लरत आपुस में रहत मम सुअन भुअन निकाय ।
सुरन के बनि जात बिधि-हरि-हरहु आय सहाय ॥
कूट नैपटु देव, जानत असुर नहिं छल छन्द ।
विपुल बल तन माँहि तौहूँ बुद्धि है कछु मन्द ॥

(२१)

युद्ध है यह बुधि अबुधि को बल अबल को नाहि ।
बिजय पावत बुद्धि जाके है अमित हिय माहि ॥
जदपि दैहिक सक्ति बहुधा विजय कौ लहि जात ।
बुद्धि-बल की पै विदित है और ही कोउ बात ॥

(२२)

कूट-नीतिहिं पालि तिन मिलि सिन्धु-मथन कीन्ह ।
लाभ को सम भाग देवन नाहि असुरन दीन्ह ॥
लियो श्रीमनि औ रमा को आपु श्री भगवान ।
अस्व, गज, तरु, धेनु, रम्भै, गह्यो सक्र सुजान ॥

(२३)

हरिहु या दुरनीति मैं परि सुरन कीन सहाय ।
वारुनी दै असुरगन को सुरनि अमिय पियाय ॥
अधिक स्रम कै, छतिहु सहि, नहिं लह्यो फल को भाग ।
लरै जो पै कोपि या मैं कहा उनकी लाग ॥

(२४)

तुमहुँ सुत ! अबलानि की सुनि करत उन पै रोप ।
नेकु तौ सोचौ करो उन है कितो सतोप ॥
पै कहत तुम करत वे अब नितहिं अत्याचार ।
याहि सुनि मो हीय आवत नयो एक विचार ॥

(२५)

अबहि उनकी विजय है यह कालिह की-सी बात ।
अबहि ते वै करन लागे हैं इतो उतपात ॥
कुटिल जन पै कितहुँ कैसेहु सम्पदा चलि जाय ।
तबहि तासु विभूति वाके मदहि देत बढ़ाय ॥

(२६)

मान-मद-पूरित - नरेसहि मूढ़ता गहि लेत ।
मूढ़ नरपति को तुरत वर नीति है तजि देत ॥
नीतिहीन महीप सो नहि प्रजा राखत हेत ।
तथा सकट - समै वाको साथ कबहुँ न देत ॥

(२७)

जथा झंझा त को इक प्रबल झोको खाय ।
मूल अति दृग विटपहू को सिथिल ह्वै हलि जाय ॥
सिथिल जाके सचिव सो नृप अवसि ही नमि जाय ।
धारिकै तरवारि चाहै कोटि करै उपाय ॥

(२८)

जबहि सचिवन माहि कौहूँ बढ़त द्वेष-दवारि ।
अखिल-नृप-कुल-बनहि या विधि तुरत डारत जारि ॥
कुमति नरपति के कुलहि सुत नसत लगत न बार ।
बस - मूलहि काटिबै को कुमति है तरवार ॥

(२९)

सुर-पराजय सुनत मोको भई जेती पीर ।
पतनसील बिलोकि असुरन होत उतो अधीर ॥
जाय याते दुहन को सुत देहु तुम समुझाय ।
बाँधि अथवा नीति-बल सौं बलिहु देउ गिराय ॥"

(३०)

सुनत पितु के बैन सुरतरु - सुमन सौं सुख-ऐन ।
तुरत विकसे लाल के राजीव - आयत - नैन ॥
प्रनति अति दरसाय अरु पुनि नाय पितु पदभाल ।
मधुर मजुल बानि सो इमि कहन लाग्यो बाल ॥

(३१)

"धारि राउर सीष और असीस को सिर तात ।
अब प्रबल बलिराज को हौ सपदि बचन जात ॥
ह्वै विमाता-तनय मेरो जदपि लागत भ्रात ।
तदपि दुरनय तात ! उनको अब सहो नहिं जात ॥

(३२)

"लखी जिन अमरावती की लूटि को भरि आँखि ।
कहत हौं तिन असुरवृन्दनि को सबै करि साखि ॥
लखैं ते बलि को गिरायो नृपति - पद सो आज ।
सिखर ते डारैं यथा गजराज को मृगराज ।।"

(३३)

भाखि बलकत वचन या विधि लागि पितु के पाँय ।
बदिकै मुनि-मडली को तासु आसिष पाय ॥
चले वामन मुदित मन अभिलाष अमित बढाय ।
बाँधि हौं बलिराज को निज नीति बल सौं जाय ॥

(३४)

कर कमडलु और पीपल - दड औ मृगचर्म ।
धरे तपहित जात बन को मनहुँ सात्विक धर्म ॥
किये बटु को वेष विद्या पढन मैं धरि नेह ।
मनहुँ मनमथ जात प्रमुदित आपु सुर-गुरु-गेह ॥

(३५)

विमल भाल त्रिपुंड विलसत सकल सोभा - खानि ।
मनहुँ सुरसरि जमुन सरसुति वही महि पै आनि ॥
किधौं विधि हरि सम्भु को यह मोह अमल अभास ।
किधौ सत, रज, तम त्रिगुन को लसत मंजु उजास ॥

(३६)

है वदन यह इन्दु कै अरविन्द यौ भ्रम होत ।
दिवस में कहुँ निसाकर को सुनो पै न उदोत ॥
औ निसा मै निज पटल अरविन्द खोलत नाहिं ।
दिवस निसि यह रहत विकसित का कहौ यहि काहि ॥

(३७)

इन्दु की उपमा सबै विधि जाति याते हारि ।
कमल के सम याहि याते कहत कछुक विचारि ॥
बसत या मे आपु ही परतच्छ वीना - पानि ।
सुमिरतै कवि-उर-अजिर मै तुरत नाचति आनि ॥

(३८)

वच्छ - थल पै लसत सुन्दर चारु चन्दन-पंक ।
मनहुँ हरि-उर में लग्यो है सुभग भृगु-पद-अंक ॥
जुगुल चरन सरोज की नहि कही सोभा जाय ।
भक्ति-जन मुनि-मन-मधुप जेहि माहि रहत लुभाय ॥

(३९)

चारु पद - नख की छटा पै वारिये सत चन्द ।
जाहि लखिकै होत दिनकर की प्रभा हू मन्द ।
जासु-पद-छालन-सलिल विधि भरि कमंडलु लीन ।
बुन्द दै इक लोक तीनिहुँ को भलो इमि कीन ॥

(४०)

लिये सुर-सरि-सलिल-कन मग वहत मन्दहि वात ।
हरत पथश्रम बाल को या मिसु मनो सो जात ॥
परसि पद पकज मही अपनो सराहत भाग ।
करत छाया गगन घनगन प्रगटि निज अनुराग ॥

(४१)

करत मरमर पात मानहुँ गाय प्रभु गुन जूह ।
चरन पूजत विटपगन वरसाय सुमन - समूह ॥
प्रभुहि भेंटन को पसारत लता मजुल बाहु ।
पाय दरसन मुदित लूटत हरिन लोचन लाहु ॥

(४२)

पकरि सूण्ड मतग की मिसु सिंह करत विहार ।
औ कहूँ चलि कलभ पकरत केसरी के बार ॥
हरिन-सावक को रही पय सिंघिनी निज प्याय ।
तथा चाटत वाघ-सिसु को कहूँ कोऊ गाय ॥

(४३)

कतहुँ विकसत सरन में है वनज - वन बहु भाँति ।
करत हैं गुजार तिन पै मत्त मधुकर-पाँति ॥
सुमन - कोषनि ते विपुल मकरन्द-रेनु निकारि ।
पवन कचनमय करत वा सुभग सर को वारि ॥

(४४)

कतहुँ राज-मरालगन विष-दण्ड को गहि खात ।
चक्रवाक - समूह क्रीडा करत कहुँ दरसात ॥
घटनि में भरि नीर तापस-तीय लै कोउ जात ।
पैरि सर में मुदित मन मुनि-बाल आय अन्हात ॥

(४५)

हरित तृन पल्लवनि सों कोउ जज्ञमण्डप छाय ।
बेदिका वर रचत कोऊ धरत साँकलि आय ।।
कतहुँ वहु वटु मिलि सजोवत जज्ञ को इमि ठाठ ।
कतहुँ मुनिजन करत प्रमुदित सामयजु को पाठ ।।

(४६)

देत आहुति समुद ऋत्विक् हवन मंत्र उचारि ।
कतहुँ स्वाहा कहि स्रुवा सो घृत अनल महँ डारि ।।
लेत सुर परतच्छ ह्वै तहँ आपनो मख-भाग ।
और राखत वै सदा जजमान पै अनुराग ।।

(४७)

कतहुँ जज्ञ समापि कोऊ मुदित मन जजमान ।
देत दिजगन को अमित सनमानि अतुलित दान ।।
कोउ सरि मैं पैठि अवभृथ करत वर असनान ।
सफल कै निज काज को इमि लहत मोद महान ।।

(४८)

मिले बहु मुनिगन हुते जे नरमदा तट जात ।
सुन्यौ उनसे बाल बलि-हय-मेघ-मख की बात ।।
कोउ कह्यो "कोऊ कहूँ त्रयकाल त्रय जग माँहि ।
बलि-सरिस दानी भयो, है, और ह्वै है नाँहि ।।"

(४९)

कान करि बामन मुनिन सो बलि-प्रसंसा भूरि ।
करत देवन दिजन की वह जाचना सब पूरि ।।
लेउँ वासो जायके सारी धरा को दान ।
चूरि या मिसु देउँ दैत-नरेस को अभिमान ।।

(५०)

देवन काज सवाँरिबे कौ,
जननी कौ तथा परितोष वढावन ।
त्यौंही सुरारिन के मथि मान कौ,
औ वलि कौ वल-दर्प-हृटावन ।
आयसु तात कौ पालन कौ,
मुनि-वृन्दन कौ करिबे मन भावन ।
व्योम के मारग सो सहसा,
वलिराज पै आपु चले इमि वामन ।

द्वादश सर्ग

सार

(१)

चल्यो प्रतीची दिसि दिनमनि निज स्यन्दन सुघर भगाई।
अरु प्राची सो हेंमत धवल-परिधान जामिनी आई॥
विकसत कुमुद-कलाप वनज-वन सरनि माँहि सकुचाने।
जिमि दुरजन पर-सम्पति कौ लखि निज हिय रहत लजाने॥

(२)

अजहूँ दुरयो मान प्रमदनि के उरज-दरीचिन माही।
चढि रथ आवत चन्द तऊ यह अवहूँ निकस्यो नाहीं॥
या लगि रातौ वदन किये अति कोप हिये मँह धारत।
कमल-कोष ते अलि-अवलिन मिसु ससि तरवार निकारत॥

(३)

इन केतिक विरहिन बनितनि को वरवस वध करि डारो।
चहुँ घुमाय निसि-स्याम-सिला पै विधि विधु पटकि पछारो॥
छूट्यौ दर्प सीस फूट्यो अरु गात टूटि गये सारे।
टूक टूक ह्वै विथुरे नभ मे सोई दीसत तारे॥

(४)

मृगपति-सरिस निसक निसाकर कानन-गगन-विहारी।
मुकता-नखत विखेरि दियो नभ-तम-गज-कुभ विदारी॥
दिजपति ग्रसन पाप सो राहुहिं रोग भयो दुखकारी।
अब विरहिन-मुख-चन्द्र ग्रसनहित धावत वदन पसारी॥

(५)

परसि विमल नरमदा-सलिल को चन्द्र-कर-निकर आई।
भू सों नभ लौं देत रजत को सुन्दर तान तनाई ॥
धोये धोये धवल धाम जनु करत गगन सों बातें।
जिनके हेम-कलस पै फर फर रहे धुजा फहराते ॥

(६)

सतखण्डनि पै लसत जरत बहु मनि प्रदीप यहि भाँती ।
मनहुँ द्रोनगिरि-सिखर-सीस पै उदित औषधिन पाँती ॥
तिनको वर प्रतिबिम्ब परत इमि धवल नरमदा वारी ।
सौदामिनि घन मैं जनु राजत निजगुन सहज बिसारी ॥

(७)

जम्यो सम्भु को अट्टहास सो लगन नगर अति रूरो ।
कै यह स्वर्ग खण्ड ही दूजो सुख सुखमा सो पूरो ॥
कै सुकृती जब भोगि परमपद सुखहिं बहुरि इति आये ।
निज अवसेष-पुन्य-फल बदले याहि मही पै लाये ॥

(८)

पुर सोभा इमि निरखि दूरितें बामन अति हरखाने ।
सोचि कठिन कर्तव्य आपनो कछुक हिये सकुचाने ॥
पै पितु-मातु-अदेस तथा निज प्रथम कियो प्रन सोची ।
कै विश्राम बिताय जामिनी बलि-दृचन जियरोची ॥

(९)

होतहि प्रात अन्हाय नरमदा दियो भाल रुचि टीको ।
अजिन दण्ड कर धरयो कमण्डलु कीन्हो बटु बपु नीको ॥
माँगन जात धरा बलि नृप सों या लगि हिय सकुचाई ।
ह्वै ब्रह्माण्ड निकाय लियो द्विज बामन-रूप बनाई ॥

(१०)

करि पुनीत निज चरन धरन मो वलिपुर की वसुधा को।
मखमण्डल दिसि आपु पधारे लखि नभ उठत धुआँ को ।।
होम-गन्ध-आमोद-वलित वहि गवन मिल्यो मग आई ।
त्यो तरुगन पथ पुहुप-पाँवड़े दीन्ह्यो रुचिर विछाई ।।

(११)

लखि आदित्य-खण्ड सो वटु को मख-मण्डप दिसि आयो ।
द्वार पाल एक धाय जोरि कर भूपहि वचन सुनायो ।।
"महाराज एक ब्रह्म-तेज-वटु वामन को वपु धारे ।
चाहत है कछु जज्ञ दान को ठाढो आय दुआरे" ।।

(१२)

बोल्यो नृप "तेहि अति आदर सो वेगि इतै लै आवौ ।
सेवक सौ पुनि कह्यौ तासु हित आसन रुचिर विछावौ" ।।
आये वामन मख-मण्डप मै धरि वटु-वपु अभिरामा ।
निज प्रभु को पहिचानि मनहि मन मुनिगन कीन प्रनामा ।।

(१३)

श्रीहत भयो कृसानु कलस की दीपसिखा सकुचानी ।
सहम्यो सुक्र सुमिरि आगम को वलिविन्ध्या विकलानी ।।
पै हिमगिरि लौ धीर वीर नरपति के चित नेकु न डोल्यौ
विधिवत दिजपद पूजि अमिय रस-गिरा जोरि कर वोल्यौ।।

(१४)

"कीन्हें अवलौं अमित यज्ञ पै नाथ न दरसन दीन्ह्यो।
आजहि पूरव पुन्य उदय तें भूरि कृपा प्रभु कीन्ह्यो ।।
वेगि विलम्व न करिय कहिय दिज समै जात है वीतो ।।
आयसु दीजै तुरत करौं मै सव राउर चित चीतो" ।।

(१५)

यह सुनि बस प्रससि कह्यो बटु विहँसि वदन इमि बाता ।
"जन्म्यो आय वीररस या कुल सुनो दैत्यकुल-त्राता ॥
हेमनैन अरु कनककसिपु दोउ युद्ध वीर अवतारी ।
नारायन सो रन-अगन मे कीन्ह्यो समर प्रचारी" ॥

(१६)

धर्मवीर प्रहलाद भक्तवर भये पितामह तेरे ।
सत्य धर्म से मुख नहि मोरयो झेले कष्ट घनेरे ॥
ज्ञानवीर तव जनक विरोचन ऐमो या जगमाही ।
तिहू काल तिहुँ लोकनि के मधि ता सरिको कोउ नाही ॥

(१७)

दानवीर के रूप भूप तुम और कहाँ लगि भाखैं ।
या लगि पूरन करिय वेगि अब याचक की अभिलाखैं ॥
ह्वै है दान पाइ के अतिहित सरवस दिज कुल केरो ।
अरु रवि ससि लौं या जग रैहै भूरि सुजस नृप तेरो" ॥

(१८)

विहँसि वदन बलिराज कह्यो "दिज होउ हिये जनि भोरे ।
माँगो जो भावै हिय तुमको कछु अदेय नहि मोरे ॥
अरु तुमहूँ सो दानपात्र लहि जो कोउ औसर चूकै ।
तौ फिर उठै चूक की ता हिय नितै निरतर हूकै" ॥

(१९)

अस कहि भूपति परिचारक सो जल लावन तहँ भाख्यो ।
कचन झारी भरि गगाजल लाय सो नृप ढिग राख्यो ॥
लखि भूपति सकेत उठी बलितिन्ध्या लै कर झारी ।
आसन से बलि उठ्यो सोचि मन बटु-पद लेउँ पखारी ॥

(२०)

है अवसान असुरकुल को अब इमि अपने जिय जानी।
बोल्यौ दैत्य नृपति सो या विधि शुक्राचारज बानी ॥
"तुम नृप ! दान देन में अपनो" बिगरो बनो न हेरो।
कर आयो इन्द्रासन भूपति ! जान चहत अब तेरो ॥

(२१)

किन्हैं दान तुम देन चले हो, नैकुक हीय विचारो।
ह्वै कस्यपसुत अखिल-भुवन-पति इन सब जाल समारो॥
पलक माहिं यै तुम्हें बंचि के बाँधि पताल पठैहैं।
सकल धरा दै सुनासीर को इन्द्रासन बैठैहैं ॥

(२२)

याते जो तुम नृप चाहत हो हय-मख पूरन कीबो।
मो मति मानि भुलाइ देहु तुम दानहिं या को दीबो॥
हौं हो या कुल को गुरु या लगि तो हित कहत पुकारे।
होइ है छल अवसिहि तुम सो नृप ! मृषा न बैन हमारे॥

(२३)

सुनि गुरु वचन बैठि आसन पै नृप कछु हिये विचारी।
चरन परसि तिनके इमि बोल्यो दान बिरद सभागी ॥
प्रगटे अखिल भुवनपति जो प्रभु विस्व रूप जग माहीं।
करि हैं न्याय अवसि ये या मैं नेकहुँ संसय नाहीं॥

(२४)

बाँधो जाय दान दीबे सों कहुँ अस होत अनीती ?
ह्वै कै विस्नु अस सभव ये किमि करिहैं अनरीती ?
देव दैत्य हम दोऊ बराबरि याते इनके लेखे।
पच्छपात कहुँ करत ईसगन या जग सुने न देखे ॥

(२५)

यह तौ है गृह-कलह हमारो देव दैत्य हम भाई ।
चाहै करैं मेल आपुस में चाहै करैं लड़ाई ॥
इनको कहा परी है जो ये देवनि सीस चढ़ावैं ।
अरु इमि वस-बैर को वरवस या मिस विपुल वढ़ावैं ॥

(२६)

जो ये अखिल लोक मगल हित प्रगटे मम कुल आई ।
करि हैं देव-दैत्य-कुल-उन्नति अवनति किये हँसाई ॥
ह्वै सपूत कस्यप से पितु के क्यों करिहैं अनरीती ।
होय अनीति भले इन गुरु ! मोहि न होत प्रतीती" ॥

(२७)

सुनि इमि ज्ञान गिरा भूपति की सुक्र अतिहि मन मारयो ।
अरु इमि परुष वचन नरपति सो अमित क्रोध करि भाख्यो ॥
"छानत ब्रह्मज्ञान तुम मोसों मानत एक न मेरी ।
विदा होन चाहत प्रभुता अरु सम्पति कीरति तेरी ॥

(२८)

होनहार जो होत कछु नहि ता में वार लगावत ।
अभिलापा चतुरानन की वह जब जेहि दिसि धावत ॥
ताके पाछे लग्यो मनुज-मन याही विधि सो आवत ।
ज्यों तनु छाँह पौन पीछे तृन उपमा सुवर लजावत ॥

(२९)

इनही धरि वराह-वपु पहिले हेमनैन संहारयो ।
पुनि नरहरि को रूप धारि इन कनककसिपु को मारयो ॥
अवहि कालि की वात लियो इन तिय को रूप वनाई ।
दैतन दई सुरा अरु देवनि दियो पियूष पियाई ॥

(३०)

इनही दियो दैत्य बधुन वर करो न कबहूँ मारे ।
पै इनही छल साजि अमित-बल जुगुल बधु महारे ॥
दैत्य बंस के प्रबल सत्रु सों करत न्याय की आसा ।
इनके भूलि फेर मे परिबो भूपति परम दुरासा ॥

(३१)

सहज सुहृद गुरु मातु पिता की जो न सुनत सिख बानी ।
सो पछ्ताय अघाय हीय अरु अवसि होय हित हानी ॥
या ते मेरो वचन महिप-मनि भलो भाँति गुनि लीजै ।
या माया-मानवकहिं भूलिहु कछुक दान जनि दीजै ॥"

(३२)

कह बलि बिहँसि "भाल की रेखा प्रबल होत जग माहो ।
विधि हरि सम्भु लगाय सकल बल मेटि सकत तेहि नाही ॥
दै निज वचन दान दैवे को अब कैसे नटि जैहौं ।
ह्वै है सोई भाग मै जैसो कुलहि कलक न लैहौं ॥

(३३)

जड तरुवर पै कोउ कुठार ले जो तेहि काटन जाई ।
तौ हूँ वासो निज छाया को सो नहिं लेत हटाई ॥
दै हौं दान अवसि अब याकौं चाहै यह अपराधै ।
चाहै ब्यालपास में गहि के या बटु मो कहँ बाँधै ॥

(३४)

जो पै मोहि बिस्वासि कपट सों कहूँ बाँधि लै जैहै ।
कस्यप कुल जस-धवल-धुजा तहु नभमण्डल फहरैहै ॥
अरु दिजकुल को कुटिल क्रूरता जुगन जुगन लौं रैहै ।
ईस-अस की साक धाक सब खाक माहि मिलि जैहै" ॥

(३५)

असकहि वटुतनुहेरिकह्यो "दिज! निज मन भावत जाँचो।
दैन्य-त्रस-अवतस-नृपनि को कहुँ प्रन होत अमाँचो ?
पाय भूप सकेत लियो कर नृप-तिय कचन-झारी।
रजत-थार में त्यों वलि लीन्ह्यो वटु-पद-पदम पखारी ॥

(३६)

कह वटु विहँसि "महिपमनि! अपनो वस-विरुद गुनिलीजै।
मेरे साढे तीनि पैड महि मोहि दान में दीजै ॥
छाऊँ कुटी नरमदा तट पै सुख सो दिवस विताऊँ।
गाऊँ सुजस तिहारो नित ही सिव सो ध्यान लगाऊँ ॥

(३७)

जनि डरपो हिय भूप! जानि कै यह जाचना अनोखी।
चाहिय होन विप्र वसिनको सव विधि-परम सतोपी ॥
कहा धरो है लोक-विभव अर धरावाम-धन माही।
ब्रह्मनिष्ठ-दिज कहँ साँचो नृप! कछू चाहिये नाही" ॥

(३८)

कह्यो महीपति "अहो वाल वटु! कहा भई मति भोरी।
वलि सो दाता पाय करत हो तऊ जाचना थोरी ॥
माँगहु हरपित हीय धरा धन धाम रुचै जो तोही।
सिव-पद-सपथ कहत साँची दिज! कछु अदेह नहि मोही" ॥

(३९)

कह वटु "साढे तीन पैड महि सो सतोप न आवै।
तिहूँ लोक को दान पाय कै तो परितोप न पावै ॥
आठहु सिद्धि नवौ निधि सो अव हमको कहा सहारो।
चर्म कमडलु दण्ड और तप धन है इतो हमारो" ॥

(४०)

कह नृप "दिजवर गहरु नेकहू अब यामैं नहि कीजै ।
साढे तीन पैंड महि तुमको जहँ भावै लै लीजै" ॥
"बोल्यो वटु सकल्प विहँसि अरु नृप-तिय ढारयो पानी ।
"कहाँ चहत हो भूमि" विहँसि बलिबोल्यो इमि मृदुबानी ॥

(४१)

"इतही" यह मुख कढत तुरत सिगरो मखमण्डल कांप्यो ॥
दिज निज चरन बढाय दुपद में भूमि रसातल नाप्यो ॥
जबहि तीसरो पैंड धरन को नहि थल कहूँ निहारयो ।
करि भुव वक तबैं बलि सो वटु बलकत बैन उचारयो ॥

(४२)

"हे नृप रिधि सिधि पाय मानतैं तै गुरु सीख न मानी ।
तीजौ पैंड धरन को पुहमी क्यों न देत अभिमानी" ?
हिमगिरि सो ऊँचो पुनि अपनो दर्पित सीस नवाई ।
"नापि लेउ मेरो तन सारो, विहँसि कह्यो बलिराई ॥

(४३)

यो कहि परयौ दण्ड-सम महि पै अरु बलि कछू न भास्यौ ।
वामन चरन उठाय आपनो नृपति-सीस पैं राख्यौ ॥
विद्याधर किन्नरगन प्रमुदित नभ दुन्दुभी बजाई ।
गायो सुजस महीपति-सिर पैं सुमन-जूह बरसाई ॥

(४४)

कह वटु अबहुँ पैंड पूरो हित ठौर दिखात न मोही ।
या लगि विकट वर्मबन्धन मैं अब बाँधत हौं तोही" ॥
अस कहि पच्छिराज का सुमिरयो वरुन-पास मँगवायो ।
तामैं बाँधि दैत्य-अधिपनि को सुतल पताल पठायो ॥

(४५)

इमि निज स्वामिहि वचन-बद्ध ह्वै पास-बद्ध अवलोकि ।
सुर-विजयी-नृप-चमू-पाल निज क्रोध सक्यो नहि रोकी ॥
बोल्यो "या बटु ने धोखो दै नाथ! तुम्है है बाँधो ।
अरु या मिस करि कपट आचरन देवन को हित साधो ॥

(४६)

या ते मोहि दीजिए आयसु याको रनहि प्रचारौ ।
कै कस्यप को धाम तपोवन अबही जाय उजारौं ॥
कै निज क्रोध-कृसानु माँहि अमरावति डारौं जारी ।
कै सुर-वस विहीन करौं मैं आजु धरा को सारी ॥"

(४७)

अस कहि सूल उठाय उग्र दृग वामन दिसि अवलोक्यो ।
तेहि नृप करि सकेत नैन सो तुरतै यो कहि रोक्यो ॥
"हे सेनाधिप? याहि वचन दै बँध्यो धर्म की डोरी ।
या ते छमा कीजियै बटु कहँ यह अनुमति है मोरी ॥

(४८)

लखौ काल की कुटिल चाल जिन ऐसो समय दिखावो ।
बाँध्यो बटु ने ताहि, कोपि जिन सुरपति-दर्प नसावो ॥
तुम सब देखत रहो जथामति प्रजा न कछु दुख पावै ।
रहियो सबै सचेत जबलौं बानासुर घर आवै ॥

(४९)

कहियो चरन बन्दि माता अरु पितु सो यहै सँदेसो ।
बाँधो गयो धर्म के बन्धन जनि हिय करै अँदेसो ॥
जदपि बैठि सुरपति-सिंहासन राज करन नहि पायो ।
पै त्रिलोक-अधिपति-हरिहू को समुहे हाथ नवायो ॥

(५०)

तात तुम्हारे पुन्य-प्रभावनि इन्द्रहि समर हरायो।
औ कस्यप-कुल-कलित-ध्वजा कहँ नभमण्डल फहरायो॥
दान सबै वसुधा को दैकै हरि को हाथ नवायो।
पै विरधापन माहि रावरे पद सेवन नहि पायो॥

(५१)

दै कै पताल को राज नरेसहि,
आपु सुरेसै उतै बुलवायो।
त्यौंही बृहस्पति को दै निदेस,
तहां तिनको अभिषेक करायो।
कीन्ह्यौ भलो इमि देवन कौ,
औ अदेवनि कौ यहि भाँति दबायो।
बामन कानन कौ गवने,
पितु मातु कौ यौ करिके मन भायो॥

त्रयोदश सर्ग

सवैया

(१)

उतै सगर मैं घननादहि तोषिकै,
राकस-राज सौं जोरि मिताई ।
जनथान मैं द्वैक दिना रहिकै,
खरदूषन की लहिकै पहुनाई ।
रजनीचरनाथ सो पाइके भेंटहि,
औ अपनो मख वाजि फिराई ।
फहरावत वीर विजै की धुजा,
निज देस कौ बान चल्यो हरखाई ॥

(२)

उतै दुन्दभी पै खरी चोट परी,
दहले हिये दैन प्रवीनन के ।
पग आगे वढाये न नेकु परै,
छुटिगै इमि साहस धीरन के ।
लखि बान कह्यो "रन मैं चढिकै,
न मुरे समुहे कबौं तीरन के ।
विडरै या चमूचय झोकनि सौं,
दुरभाग विरोधी समीरन कै ॥

(३)

यों कहिकै जबही वर वीर नै,
आपुनो स्यंदन आगे चलायो।
सो लखिके बलि के लघुबन्धु नै,
मत्तमतंगज कोपि बढायो।
या विधि दैंत-चमू-चतुरंग को,
बान नै चौगुनो चाव चढायो।
ह्वै विजयी पै निरास हियो,
निज सैन लिये नगरै नियरायो॥

(४)

गज बाजि की भीर दिखाइ परै,
न जमोद प्रमोद की बातैं कहूँ।
बिकसे मुख-कंज प्रजा के लसैं,
न विनोद मिलाप की घातैं कहूँ।
कटि छाम पै धारे भरी गगरी,
बनिता न फिरैं बलखातैं कहूँ।
बगियानि मैं मालिनियानि के वृन्द,
लखाइ परैं नहि जातैं कहूँ॥

(५)

वह नर्मदा दूबरी पीरी परी,
बलिराज के यों विहरानल तायकै।
हरियारी मिटी तरु-वृन्दन की,
न प्रसून खिलै खरो सोग मनायकै।
सुक सारी बुलाये न बोलैं कहूँ,
पुर के जन कोऊ मिलै नहि धायकै।
करुनारस की मनो सैन सबै,
नगरी मैं निवास कियो इतै आयकै॥

(६)

सूनो परो मखमण्डल त्यौं,
महि लोटत तुंग धुजा अरु नारी।
जज्ञ-कृसानु भई चय राख की,
औंधो परो घट सूखि गौ बारी।
स्वान स्रुवा गहे, वायस बातिन,
औ घृत-दीपनि चाटैं बिलारी।
यौं हय-मेध-थली की दसा,
महिपालकुमार ने आय निहारी॥

(७)

मखसाला भई सबै श्रीहत यौं,
मनौ रुद्र ने कामपुरी लई लूटी।
लखिकै दयनीय दसा बलि-बन्धु के,
सासह ही को गयो मनो छूटी।
गृह-द्वार की बन्दनवार को बाल,
बिलोक्यो परी इतही उत टूटी।
अरु या मिसु दैतकुमारनि कौ,
सब ही बिधि भाग गयौ मनौ फूटी॥

(८)

मूरति-सी करुनारस की,
पलका पैं परी लखी मातु अकेली।
काटे गये तरु पैं ज्यौं चढी,
मसली मुरझाई गिरी जनु बेली।
बैठि गईं तिय साहसकै,
बहियाँहि गही कोउ दौरि सहेली।
दीन्ह्यौ सबै बसुधा जिन दान में,
वा बलि की यह नारि नवेली॥

(९)

बान को देखत ही तिय नै,
दुख पाय घने अँसुवा वरसायो ।
ज्यौ निधनी धन पावै कहूँ,
लखिकै तेहि वाम कौ धीरज आयो ।
सूँघि के माथ विठाय समीप,
भुजा भरिकै तिहि कठ लगायो ।
बोलन कीन्ह्यो प्रयास तऊ,
भरि आयो गरो न कछू कहि आयो ॥

(१०)

आयो विरोचन ताही समै,
विरधा वलि-मातु हूँ साथहि धाई ।
बान के आवन की सुधि पाइकै,
आइ जुरे कित लोग लुगाई ।
सोक-नदी उमडी अति वेग सौं,
धीरज-कूलिन दीन्ह्यो गिराई ।
तौ लगि सुक्र लिये वटु साथ,
उतै नृप-मन्दिर मै गयो आई ॥

(११)

परसे गुरु के पद पकज वान नै,
पाय असीस भयो वड भागी ।
अवला निज घूँघट घालि मयक सो,
आनन वामै दुरावन लागी ।
सुत ! वीरज धारो कह्यो गुरु नै,
विधि वाम न काहि कियो हतभागी ?
वह बीति गयो जु पै पुन्य-प्रभात,
तौ काल-निसा चलिहै तुमै त्यागी ॥

(१२)

ह्वौ बलि कौ समुझायो कितो,
    बनिये जनि या बिधि औढर दानी।
पै बटु की बतियानि में आयकै,
    मेरी सिखावनि एक न मानी।
हाँथ जरै मख के करतै,
    बिधि फेरि दियो निज लेख पै पानी।
आजु लौ ऐसी सुनी न लखी,
    कहुँ बाँधेउ जात त्रिलोक के दानी॥

(१३)

पै अब यामैं धरो है कहा,
    जो भई सो भई सुत ! ताहि बिसारौ।
बूढ़े बबा कौ करौ प्रतिपाल,
    जरा जननी को सबै दुख टारौ
दैत के बंसिन के सुत ! बान,
    अहौ तुमही बस एक सहारौ।
फूलौ फलौ सुर - पादप लौ,
    लहिके इमि आसिरबाद हमारौ॥

(१४)

आजु लौं याही सुन्यो औ गुन्यो,
    पदमा बरबानि में बैर है भारी।
ही को दुराव दुराय दुवो,
    सुत ! सीस पै तेरे रहैं करवारी।
संग बिजय की बिभूति रहै सदा,
    जो लगि देव-नदी बहै बारी।
बानी बिलास करै मुख में,
    कमला कबौ बाँह तजै न तुम्हारी॥

(२१)

सोनपुरी में करैं लग्यो राज,
प्रजा परिपालन में मन लाये।
इन्द्र लौं आसन पै लस्यो वान,
बृहस्पति सौं गुरु सुक्र सुहाये।
फूलै फलै सवै लागी प्रजा,
धन धान्य सो खेत लसे लहराये।
मानो तिहूँपुर के विभौ आयकै,
सोनपुरी में वसे सुख छाये॥

(२२)

वीती किते वरसै नृप वामनै,
चन्दकला - सी उषा उपजाई।
त्यौंही षडानन लौं असकन्द,
तनै भयौ दैत-नरेस के आई।
खेलै दुऔ मनिमन्दिर मैं,
जननी कौ अपार प्रमोद मढाई।
वाढन लगी ससी लौं सुता,
औ चढै लगी अगनि अग निकाई॥

(२३)

पितु के सँग बाल सकद जबै,
सिव-सेल पै खेलन जायो करै।
अँखियानि कुमार की कोहूँ गनै,
औ गजानन सुण्ड नपायो करै।
गहि मूस की पूँछ मरोरै कवौं,
वरही पै कवौं चढि जायो करै।
फुसकारत व्यालिनी को निदरै,
सटा केसरी की गहि धायो करै॥

(२४)

अस्त्र प्रयोग निवारन की,
धनुर्वेद मैं वा ने क्रिया सिखी सारी।
सब्द को वेध तथा चल-लच्छ,
प्रहारनि की विधि हू गुनि डारी।
जान्यो गदा-असि-युद्ध प्रवीन,
प्रवीरनि सौं लरै लाग्यो प्रचारी।
या विधि वान-कुमार भयो,
सो षडानन ही सौं महा धनुधारी॥

(२५)

सुत वान को होड षडानन सौं करि,
या विधि वान चलायो करै।
सुर-रूख प्रसूननि काटि किते,
सिव-सीस समोद चढायो करै।
सर-सेतु सो भूमि-अकास मिलाप,
सुरेस-मतग मँगायो करै।
हिमवान मैं त्यौं भृगुनायक लौं,
किते क्रौंच के रन्ध्र वनायो करै॥

(२६)

सर छूटि सरासन सो निज लच्छ पै,
कौ हू नही लगि पायो करै।
वह धाय कुमार समीरन वेग सो,
वीच ही तैं गहि ल्यायो करै।
चुटकी सो गहै अनी कुन्तल की,
असि कुंठित केती करायो करै।
करवाल प्रहार सौं सैलनि के,
नित ही जुग खण्ड वनायो करै॥

(२७)

'एक' 'नौ' 'सात' 'प' 'ना' 'मा' पढ़ै,
कवौं लेखनी कौ उलटी ,मसि बोरै।
आँगुरी सौं पटिया पै लिखै,
खरिया तेहि माहि मिलायकै घोरै।
नैकु वुलाये न बोलै कवौं,
कवौं खीझि कै केतो मचावति सोरै।
मूरति लौं गडी वैठी रहै,
पै पुकार सुनेही भगै वरजोरै॥

(२८)

वीते कछू दिन राज-सुता,
गुरु-तीय को सासन मानन लागी।
सीखन लागी कछू गिनती,
अरु आखर हू पहिचानन लागी।
त्यौं तुतराय सखीन के संग,
कथानि कौ आपु वखानन लागी।
औ गुडियानि कौ खेलिबे कौ,
जननी सौं कवौं हठ ठानन लागी॥

(२९)

या विधि षोडस वर्ष गये,
अधरानि पै वाके ललाई लसै लगी।
चन्दन हू के लगाये विना,
सवै अंगनि सौरभ-सी सरसै लगी।
अंजन रंजन कीन्ह्यौ नही,
चख काजर रेख लगी दरसै लागी।
वाल के आनन सौ मुसकानि,
सुधा घनसार घनी वरसै लागी॥

(३०)

चौंसठ हू कला सीखी सबै,
पै विसेख रुच्यो तेहि चित्र बनाइबो।
जान्यो मृदंग बजावन को,
षटराग पै वारितरंग मिलाइबो।
'मूर्च्छना' 'ग्राम' औ मीडनि की,
गमकै करि बीन प्रबीन बजाइबो।
मंजु मयूर लौं नाचिबो सीख्यो,
अलापि 'बसन्त बहार' को गाइबो॥

(३१)

बीन बजाय उषा जबै चाव सौ,
मेघ-मलारनि गावन लागै।
घेरि घने नभमण्डल कों,
बदरा बुँदिया बरसावन लागैं।
सो लखि नाचै मयूर लगैं,
कल क्वैलियाँ तानैं लगावन लागैं।
पै दिन ही को निसा गुनिकै,
चकवा चकई दुख पावन लागैं॥

(३२)

गायन चातुरी औ पटुता लखि,
तुम्बुर नारद भै मति - हीने।
किन्नर जच्छ सकायकै सामुहैं,
गावन को कबौं नाम न लीने।
होय अनर्थ कहूँ जग मैं नहिं,
या पै विचार जबै विधि कीने।
डोलिहैं मेरु धरा सुनि तान कौ,
या लगि सेष कौ कान न दीने॥

(३३)

चितरेखा कुभंडक की तनया,
तिया बाल मृनालहू तें सुकुमारी।
निज सील सुभाव सो मंत्रि-सुता,
समवैस उषा की सखी बनी प्यारी।
जबै बैठै दोऊ निसि आसन पै,
जुग चन्द की फैलै दुचन्द उजारी।
कबौं दोहुन की बतियानि में मंजु,
पियूष की धार बहै रसवारी॥

(३४)

सजि सूहे दुकूलनि केस-कलाप,
प्रसूननि ही सौं बँधावै, दुओ।
कबौं आपुस मैं दुओ मान करैं,
कबहूँ परि पाँय मनावै दुओ।
मनुहारि करैं मिलि दोऊ कबौ,
औ भुजा भरि कंठ लगावै दुओ।
पय-पानिप लौं मन दोऊ मिले,
नहिं रंचक भेद दुरावै दुओ॥

(३५)

ऊषा कह्यो "सखी! देखु वृथा,
ये चकोर रहैं निसि मैं हमैं घेरे।
त्यौं मदमाते मलिन्दन-वृन्द,
करैं मुखमण्डल पै नित फेरे।
देखौ तडागनि माँहि जबै,
मुँदि सम्पुट जात सरोजनि केरे।
कारन याको कहा सजनी,
तुमही कहौ ध्यान न आवत मेरे॥

(३६)

भाजन के जल मैं सफरी,
औ लखाई परैं कबहूँ जलजात हैं ।
पैं जबै पानि सौं चाहौ उठावन,
जानैं-कहाँ ते कहाँ वैं बिलात हैं ।
और कहाँ लौ कहौ सजनी,
दृग कानन सौं बढतैं मिले जात हैं ।
द्वै दिन ते कछू जानी नही,
मन और के और कहा भये जात हैं ॥

(३७)

मन रंजन खंजन के चटुआ,
अँगना मैं कहा दृग खोलैं नहीं ।
परे पंजर में चकवा चकई,
औ चकोरिनी मंजु कलोलैं नहीं ।
केहि बैर सो वै सुक सारिका चारु,
बुलायेहू ते मुख खोलैं नहीं ।
तिमि गावन में पटु कोयलियाँ,
मन सामुहे क्यो मृदु बोलैं नहीं ॥

(३८)

अंगराग न अंग लगावै सखी,
पग जावक नायन लावै नहीं ।
नहि अंजन आँजे अली दृग मैं,
बिरिआइन बीरी रचावै नहीं ।
गुहि सोन - जुहीनि के मंजुहरा,
गरे मालिनिया पहिरावै नहीं ।
जेहि भौन मैं बैठो तहाँ निसि मैं,
परिचारिका दीप जरावै नहीं ॥

(३९)

वैई कदम्बनि कौ परसे,
वहै सीतल मन्द सुगन्ध वयारी ।
त्यौं सित चादर-सी विछी भूमि पै,
वैसियै धौल - मयक - उजारी ।
वैई प्रसून पराग वेई,
रितु के गुन वैसेई देखि ले प्यारी ।
पै गति हाय हिये की सखी,
वा कछू ते कछू भई जात हमारी" ॥

(४०)

"दूखै चकोर अलीनि वृथा,
चकवा चकई पिक औ सुक 'सारी ।
औगुन आयो नहीं रितु मैं,
प्रकृती के अजौं गति वैसियै प्यारी ।
मानै अनैसो न यामै कछूक,
दुराज प्रजा भई राजकुमारी ।
धीरज धारौ खरो हिय मैं,
हरिहै दुख सोई वडो धनुधारी ॥

(४१)

या तन औ मन पै सजनी,
कछूहू अधिकार रह्यो नहि तेरो ।
तो हिय मै अव साँचो सुनौ,
कियो मैन महीप नै आयके डेरो ।
या ते सवै विपरीत लगै तोहि,
दूसरो और न कोऊ निवेरो ।
पूजिहैं हीके सवै अभिलाष,
यहै वस आसिरवाद है मेरो ॥"

(४२)

या विधि आपुस मै बतरात ही,
सारी उजारी निसा अधियानी ।
राजकुमारि के नीरज नैननि,
आय कछू निदिया नियरानी ।
सोय रही तिया सेज पै जाय,
गई चित्तरेखा उषा नही जानी ।
सापने मैं धनुधारी लख्यो,
अपने ढिग या विधि रैनि सिरानी ॥

(४३)

प्रात ही आय सहेली गई,
नभ आई उषा पै उषा नही जागी ।
रागमई भई प्राची दिसा,
उठिबेको न राजसुता अनुरागी ।
पकज पानि हिये पै धरयो,
गुन्यो सारो सरीर जरै मनो आगी ।
वाहि विहाल विथा सों लखे,
उपचारनि को करिवे सखि लागी ॥

(४४)

परयक पै लोटे विहाल उषा,
मुरझाय गई मानो फूल - छरी ।
घनसार उसीर को लेप कियो,
सित कुकुम लौं सो परो विखरी ।
विजना करतै रही, सींसिह लाइ,
गुलाब की नाइ दई सिगरी ।
वनि धूम उड्यो सोई, फूट्यो हरा,
विरहानल में इमि जात जरी ॥

(४५)

पूँछै लगी कहौ "राजसुता,
निसि में यह कैसी दसा भई तेरी।
कै जुर आयौ पियारी तुम्है,
कै लई कोऊ-अतर व्याधि ने घेरी।
साँचही साँचौ कहौ हम सौं,
जो पै राखती तू इती प्रीति घनेरी।
तोहि विहाल लखै सजनी,
घबराय रही अतिसैं मति मेरी"॥

(४६)

"तो सौं दुराव की बात कहा,"
इमि भाख्यौ उषा तेहि की दिसि हेरी।
"सापने में धनुधारी लख्यौ,
जिन माल प्रसूननि मो गर गेरी।
अक भरचो मोहि गाढे सखी!,
करी नेह-नहो बतियाँ बहुतेरी।
पानि सरोजहि धारि लखौ,
धरकै अजहूँ छतियाँ लखौ मेरी॥

(४७)

नीरद नील सौ सुन्दर गात,
लसै छनदा पट पीत निकाई।
बाहु विसाल, बडे बडे नैन,
विलोकत ही चित लेत चुराई।
आयकै चौसर दीन्हो विछाय,
दियो तनहू मन दांव लगाई।
हारि कै वा संग री सजनी,
विन दाम गई तेहि हाँथ बिकाई॥

(४८)

ऐसोई वीर ! उपाय करौ,
जेहि आनन-इन्दु लखौं तेहि केरो ।
जात जरो विरहानल गात,
बुझावन मैं जनि लाउ अबेरो ।
जौ लगि जीहौं सुनौ सजनी,
कबहूँ उपकार न भूलि हौं तेरो ।
जैसे बनै अरी तैसे सखी !,
अबही चितचोर बुलाय दै मेरो ॥

(४९)

सो सुनिकै चितरेखा कहू,
बिहँसी तेहि ओर चलायकै आँखैं ।
"दै है कहा हमको उपहार मैं,
जो तुव पूरी करैं अभिलाखैं ।
"या तन औ मन तेरो भयो,
तोहि देन को और कहा हम राखैं ।
प्रेमहू को करि - लै समभाग,
तऊ मन माहि उषा नहि माखैं" ॥

(५०)

धीरज राजसुता को बँधायकै,
जायकै सो पटतूलिका लाई ।
नाक - रसातल - वासिन की,
तिय ने तेहि पै तसवीर बनाई ।
अंकन लागी जबै पट पै,
जदुवंसिन के वर चित्र सोहाई ।
देखत ही अनिरुद्ध की ओर,
कछू मुसकानि उषा-मुख आई ॥

(५१)

भाख्यो सखी सो उषा सतराय,
"यहै चितचोर यहै धनुधारी ।
वेगि ही याही बुलावन को इत,
क्यों न उपायनि को करै प्यारी ।"
सो कह्यो "या जदुवंस-विभूषन,
मार-तनै अतिसै वलधारी ।
द्वारिका माँहि वसै सुखधाम,
करै ससि लौं ससि वंस उजारी ॥"

(५२)

ऊषा कह्यो "सुनु री सजनी,
तुमरे वस जीवन प्रान हमारो ।
या जग मैं कोउ देखि परै नँहि,
मो दुखिया के जिया को सहारो ।
बोरो चहौ गहि सोक के सिन्धु मैं,
कै वहियाँ गहि मोहि उबारो ।
टारो निरासा अँध्यारो सबै,
जु पै देखी चहौ मुखचन्द उजारो ॥"

(५३)

"धीर धरौ चितरेखा कह्यो,
तुमरे हिय को अभिलाष पुरैहौं ।
जानती व्योम-विहारिन की विधि,
द्वारिका को अवही उडि जैहौं ।
मन्त्रनि के बल, मोहि सबै,
रखवारनि को अवही इतै ऐहौं ।
या विधि सों प्रिय बालम को,
अवही सजनी तोहि ल्याय मिलैहौं"॥

(५४)

यौं कहिकै चितरेखा चली नभ,
मानौ दई कोऊ रेख खिचाई ।
कै करि कोप प्रवीर कोऊ,
धनुधारी दियो मनौ बान चलाई ।
द्वारिका मैं पहुँची तिय जायकै,
हेरि प्रभा गयो हीय हिराई ।
पै सखि-कारज सीस धरे,
अनिरुद्ध के भौन धँसी सचुपाई ॥

(५५)

सेष की सेज पै राजै जथा हरि,
छीर-पयोनिधि मैं दुखहारी ।
फेन-सी सेज पै सोवत त्योंही,
बिलौर के मन्दिर ताहि निहारी ।
कीन्हौं मनै मन वाम प्रनाम,
उठाय लियो पलका सुखकारी ।
मन्त्रनि के बल सौं उडि आपु,
अकास सो सोनपुरी पगुधारी ॥

(५६)

अनिरुद्धको या विधि ल्याई तिया गहि,
पै यह भेद न काहू लखान्यो ।
नृप की तनया सब दुःख भुलायकै,
आपुनो भाग-उदै अनुमान्यो ।
दविकै उपकार के भारनि सो,
चितरेखहि त्यौ अतिसै सनमान्यो ।
तजि द्वारिका को कहाँ आय गयो,
यह रंचक मार-कुमार न जान्यो ॥

(५७)

मन्त्र-निवारन होत ही नैननि,
त्यागि कहूँ निदिया पगुधारी ।
हेम-विमडित-भौन की भीति ने,
त्यों निज दीठि कुमार ने डारी ।
पौढयौ जक्यो सो रह्यो कछु देर लौं,
पै मुख वैन सक्यो न उचारी ।
तौ लगि वा रति की मद-मोचिनी,
आय गई हँसि राजकुमारी ॥

(५८)

पाँयनि पै परिकै अनिरुद्ध के,
वोली तिया भरि लोचन वारी ।
"तो सँग चौंसरि खेलिकै नाथ,
गई अपनो तनहू मन हारी ।
या लगि कीन्ही ढिठाई इती,
कर मेरो गहौ हौ गई वलिहारी ।
चेरी भई तुव पाँयनि की,
अव राखिले वालम लाज हमारी ॥"

(५९)

यौ कहि पकज सौ गहि पानि को,
वा कहँ मजन आपु करायो ।
त्यौंही गुलाव फुहारनि सो,
अन्हवाय पितम्वर को पहिरायो ।
व्यजन लाय सुधारस स्वादु के,
आपने हाथन वाम जिमायो ।
पान खवायो प्रमोद भरी,
परिचारिका चौसर आय विछायो ॥

(६०)

ऐसे बान-मन्दिर में विहरि उषा के संग,
लाग्यो सुख दिवस बितावै अनिरुद्ध वीर।
उत द्वारिका में सुत-हरन अचानक ही,
लखि जदुबसिन को हिय न धरत धीर।
सोवत सों जाको हिय-खण्ड ही हिराय गयो,
कैसे कै बखानै कोऊ जननि-हिये की पीर।
भोर ही तें साँझ लौं नितैही भूप-मंदिर में,
लागी रहै सोक की सताई बनितानि भरी॥

चतुर्दश सर्ग

रोला

(१)

कपत रवि नभ कढत मनहु वरसावत आगी ।
मन्द समीरन व्याल - वदन - स्वासा सम लागी ॥
कूजत विहग-समाज आजु जनु दुख दरसावत ।
सुमन-जूह तरु डारि मनहुँ अँसुआ वरसावत ॥

(२)

हिय - अवेग-सी उठैं सिन्धु लहरैं वहुतेरी ।
कोउ अनहोनी वात कहत जनु या मिसु टेरी ॥
बहत आँसु की धार सरिस सरिता महँ पानी ।
मनहुँ मही की भई कोऊ अतिसै हित हानी ॥

(३)

केहि कारन अनिरुद्ध आजु नहिं परत लखाई ।
औ पग परसन काज बधू अब लौ नहिं आई ॥
यासो कछु मन खिन्न रही वर रुकमिन रानी ।
अरु सोचत कछु रहे मनहिं मन सारगपानी ॥

(४)

तौ लगि तजि रँग-भौन तहाँ आयो बल भाई ।
पूँछयो "कहँ अनिरुद्ध कहूँ नहिं परत लखाई" ॥
सो सुनि रुकमिनि तुरत तहाँ भेजी एक दासी ।
लावहु कुँवर बुलाय करै सो दूरि उदासी ॥

(५)

चढी महल सतखण्ड कुँअर रग - मौन निहारी ।
कटु रव तेहि फटकारि लगे कूजन सुक - सारी ॥
भूकन लाग्यो स्वान गई दासी घबराई ।
गर्जनि ताकी सुनत बधू सिजिया तजि आई ॥

(६)

"कीन्ही बडी अवेर कह्यो दासी मृदु बानी ।
कब की जोहति बाट बैठि चिन्ता-बस रानी ।
गौने कहाँ कुमार खडे पूँछत बलदाऊ ।
लीन्ह्यौ घेरि विषाद आजु मानौ सब काऊ ॥"

(७)

कह बधु घूँघट घालि कछू मन माहि लजानी ।
"बहुत राति लौ कहत रहे हर - व्याह-कहानी ।
पै तबहूँ नहि नीद जबै नैननि मैं आई ।
गायौ राग बिहाग दई मै बीन मिलाई ॥

(८)

धरी इतै पै पाग और पदत्रान इहाही ।
यातै उपजति कछुक कछू चिन्ता मन माही ॥
गौने ह्वैहैं कहूँ सिन्धु - तट खान बयारी ।
आवत ह्वैहै चपल तुरँग कीन्हैं असवारी ॥"

(९)

तुरत अटा ते उतरि रानि ढिग दासी आई ।
भारयो सकल प्रसग बधू सौं जो सुनि आई ॥
सो गुनिकै बल कान्ह, साम्ब, आदिक दुचिताये ।
प्रद्युमन, सात्यकि, सहित सभा मँह सब जुरि आये ॥

(१०)

बल सात्यकि तन हेरि कह्यो इमि गहवर वानी ।
"गयो कहाँ अनिरुद्ध आजु कछु परत न जानी ॥
आधी निसि लौ रह्यो गौरि-हर-व्याह सुनावत ।
पीछे वीन बजाय रह्यो मधुरं कछु गावत ॥

(११)

परी पाँवरी पाग महल मे वधू बतावत ।
गयो कहाँ चलि वाल समुभि मे नेकु न आवत ॥
खले न द्वार कपाट जगत सारे प्रतिहारी ।
नहि कछु भेद लखात कहा करिहै त्रिपुरारी" ॥

(१२)

कह्यो सात्यकी "नाथ ! ताहि मृगया अति भावत ।
गयो कहूँ मृग साथ वालबर वाजि भगावत ॥
अथवा भटक्यो भूलि कहूँ वन-वीथिन माही ।
या ते अब लौ आय सक्यो अपने गृह नाही ॥

(१३)

तब लौ एक चर आय ललित लायो मनि-माला ।
राख्यौ वल ढिग जाय सुघर कसमीर दुसाला ॥
कह्यो जोरि कर "नाथ इन्है उत्तर दिसि पायो ।
प्रभुहि समर्पन काज इन्है सेवा मे लायो" ॥

(१४)

सुत को पट पहिचानि अतिहि लाग्यो मन ऊबन ।
करुना-सिन्धु अगाध माहि लागे वल डूबन ॥
गहवर-हिय हरि कह्यो जवहि माला पहिचानी ।
"काहू डारयो मारि ताहि ऐसो जिय जानी ॥"

(१५)

तव बल सो कर जोरि साम्व बोलेहु मृदु बानी ।
"वा समुहे कोउ वीर सकत नहि पकरि कृपानी ॥
नैसुक साहस गहो सबनि को धीर बँधाओ ।
जानत भूत भविष्य विज्ञ दैवज्ञ बुलाओ" ॥

(१६)

सो सुनि बल धरि धीर तुरत चर एक पठायो ।
प्रश्न विचारन काज विज्ञ जोतिसिन बुलायो ॥
ते सुनि राज-निदेस तुरत चर साथहि आये ।
दीन्हो बल बहु दान उचित आसन बैठाये ॥

(१७)

तव बोले हरि "सुनहु विप्र या प्रस्न हमारो ।
गयो कहाँ अनिरुद्ध सकल मिलि यहै विचारो ॥
जागत आधी राति रह्यो निज मन्दिर माही ।
पै प्रभात को सौध छाँडि आयो महि नाही" ॥

(१८)

सुमिरि गजानन सम्भु गौरि अरु सारद सेखै ।
खैंचन लागे विप्र तुरत पटिया पर रेखै ॥
अरु बूढे रम्माल गनित करि जोग मिलाई ।
पाँसे डारन लगे कछुक मन मैं सकुचाई ॥

(१९)

प्रथम रमालन पृथक पृथक निज जोग विचार्यो ।
पुनि सब मेल मिलाय वचन यहि भाँति उचार्यो ॥
किते चक्र कुण्डलिन तहाँ जोतिसिन बनाये ।
बहुरि सोधि पचाग आपनी विधि वैठाये ॥

(२०)

"उत्तर गयो कुमार कोऊ प्रमदा सँग ताके ।
दियो मंत्र-बल छेंकि वाम वा दिसि के नाके ।।
जासे कोऊ सकै नाहि पीछो करि वाको ।
धावैं जादव वीर छीनि नहि लेय युवा को ।।

(२१)

पै सका की बात नाथ ! या मे नहिं कोई ।
करि नहिं सकत अनिष्ट चहै यम हू सो होई ।।
याते चरन पठाइ बाल को सोध लगावो ।
अभय करौ पुरकाज सकल भय-भेद भगावो ।।"

(२२)

अस कहि मंत्रन कीलि ग्रहनि दैवज्ञ सिधारे ।
बल, हरि, साम्ब प्रद्युम्न सदन मन मुदित पधारे ।।
रुक्म-सुता परितोषि रुक्मिनी को समुझाई ।
तब अन्हाइ जल पान कियो कछु धीरज लाई ।।

(२३)

पुनि कछु करि विस्राम सभा मँह हलधर आये ।
तुरत दूत को भेजि सकल चर-निकर बुलाये ।।
निज निज कारज निपुन, कूट नय जाननहारे ।
लै सकेतहिं खाल बाल की खेंचनवारे ।।

(२४)

दीन्ह्यो तिन्हैं निदेस "वेगि उत्तर दिसि जावौ ।
गयो उतै अनिरुद्ध तासु को पतो लगावौ ।।
जो नहि मिल्यो कुमार किती अपकीरति ह्वैहै ।
गुप्त-चरन की साख धाक माटी मिलि जैहै ।।

(२५)

पुनि हलधर निज पानि पान सवहिन को दीन्ह्यौ।
वहु विधि सो समुझाय विदा चर-निकरनि कीन्ह्यौ ॥
ते सव चले जुहारि स्वामि-कारज मन लाये ।
व्यापारी, वटु, साधु, विप्र तिय वेष वनाये ॥

(२६)

कन्दर खोह पहार सरित सर नद अरु नारे ।
अनायास करि पार खोजि मुनि-आश्रम डारे ॥
जहाँ भयो सदेह तहाँ रहि काल वितायो ।
तऊ न नैसुक खोज राजनन्दन को पायो ॥

(२७)

तव चर-निकर निरास सवै विधि साहस हारी ।
आय द्वारिका माहि भूप सों गिरा उचारी ॥
"कोऊ वच्यो न थान नाथ ! उत्तर दिसि माही ।
जाको हम निज दृगनि देखि आये चलि नाही ॥

(२८)

चपा चपा करि सकल भूमि भूधर अवरेखैं ।
सुन्यो न तावो नाम कहूँ, अरु ताहि न देखैं ॥
काहू विधि सों समाचार वाको नहि पाये ।
तव निजमुख मसि लाय हिये पाहन धरि आये ॥

(२९)

पै मुखिया नहि फिरयो हमैं प्रभु पास पठायो ।
औ दोऊ कर जोरि यहै सदेस सुनायो ॥
तीनि मास मँह जु पै कुमारहि खोजि न पैहौं ।
मानसरोवर फांदि आपने प्रान गवैहौं" ॥

(३०)

अस कहि चढि वर बाजि गयो उत्तर दिसि माही ।
हम लै दुखद-सँदेस नाथ! आये तुम पाँही ॥
सो लैहै सुधि अवसि कछू यामे सदेह न ।"
अरु कहि वल पद नाय गये चर निज निज गेहन ॥

(३१)

उत उत्तर दिसि जाय सोनपुर चर नियरान्यो ।
फरक्यो दच्छिन बाहु सगुन गुनि हिय हरखान्यो ॥
सीतल मन्द समीर दियो मग-खेद निवारी ।
मन मँह अमित उछाह नगर दिसि चल्यो अगारी ॥

(३२)

निवसि अतिथि-गृह निसा सबै सुख सोइ बिताई ।
होतहि प्रात अन्हाय भाल दै तिलक सोहाई ॥
पहिरि रुचिर परिधान पाग केसरिया धारे ।
बाँधे कटि करवाल गयो इमि राज-दुआरे ॥

(३३)

द्वारपाल से कह्यो "भूप जस सुनि मै आयो ।
हौं ही राजकुमार चाकरी को मन लायो ॥"
सो सुनिके प्रतिहारि भूप के सन्मुख-जाई ।
तेहि लै आवन काज लई नरनाह-रजाई ॥

(३४)

सो लै गयो लिवाय वान-समुहे तेहि काही ।
गयो भूप के निकट हिये रचक भय नाही ॥
नरपति-पद सिर नाय व्यवस्था सकल बखानी ।
'पौंपिय मोहि कछु कठिन काज' बोल्यो मृदु बानी ॥

(३५)

लखि तेहि परम बिनीत खरो जोरे जुग पानी।
धीर बीर गम्भीर युवहि सब लायक जानी॥
दीन्ह्यो बहुरि निदेस सबै विधि धीर वँधाई।
'अंतपुर के द्वार करौ रच्छा तुम जाई'॥

(३६)

नृप अनुसासन मानि आपु अन्तपुर-द्वारे।
पहरो लाग्यौ देन छद्मवपु कौ इमि धारे॥
जानत रह्यौ रहस्य अमित दासिन सनमानी।
यहि विधि लिये हवाल सबै तहँ को चर जानी॥

(३७)

सोनितपुर इमि निवसि भेद तहँ को सब जान्यो।
पुनि प्रभु-काज सँवारि देस चलिबौ मन ठान्यो॥
नृप सो लै अवकास चरन-पकज सिर नाई।
गवनेउ चर निज नगर अमित मन मोद मढाई॥

(३८)

चल्यौ द्वारिकापुरी पवन गति सौ हय हाँके।
या विधि लाँघत जात सरित-सर-सैलनि बाँके॥
बहुरि सभा-मधि गयो जहाँ बैठे यदुराई।
बल-हरि-पद-सिर नाय बैठ निज आसन जाई॥

(३९)

लखि प्रमुदित मन ताहि तुरत बल हिय अनुमान्यो।
लायो चर सुभ समाचार निहचै जिय जान्यो॥
लहि हरि को सकेत बहुरि जोरयो जुग पानी।
सोनितपुर की कहन लग्यो मन मुदित कहानी॥

(४०)

ाहँ निसर्ग दुर्बोधि नीति नृप की छल-चोरी ।
कहँ मो सरिस अबोध चरन की गति मति थोरी ॥
दुर्गेय चरित्र वान अन्तपुर - वारे ।
जान्यो मैं जदुनाथ सकल परताप तुम्हारे ॥

(४१)

ो सोनपुर कुँवर वान भूपति-रजधानी ।
राख्यो ेहि नृप-सुता राजमन्दिर सनमानी ॥
की प्रिय सहचरी नाम जाको चितरेखा ।
लै गई ताहि उड़ाय गगन पथ काहु न देखा ॥

(४२)

नासुर हू नाथ! सुता को भेद न जानत ।
है अनिरुद्धहिं बहुत राज - तनया सनमानत ॥
सु नेह में नह्यौ कुँवर सुधि सकल बिसारी ।
प्रमुदित खेलत रहत ताहि सँग पसासारी ॥

(४३)

जनीति यह कहत होत चर नृप के लोचन ।
कटु अथवा मृदु कहौ सुनिय तेहि त्यागि सकोचन ॥
त न कहुँ हित बैन सदा स्रोननि सुखकारी ।
स्रवन सुखद तिमि बचन सकत नहिं काज सँवारी ॥

(४४)

चर सोई अधम साधुमत जो नहि राखै ।
नृप सो करै दुराव और की औरहि भाखै ॥"
र वर इमि मन सोचि नेकहू सकुच न लायो ।
कहन लग्यो अरि-विभव आपु जैसो लखि आयो ॥

(४५)

"सोनितपुर नग-अक लसत अमरावति जैसो ।
त्यों ही नृप-नय-निपुन बान सुरपति सम तैसो ॥
सुरगुरु-सम गुरु सुक्र सचिव दिगपति-सम सोहत ।
बान-सभा इहि भाँति त्रिदसपति सभा विमोहत ॥

(४६)

केवल चित के चोर, फलन ही में गदराई ।
राज-काज के हेतु रही तहँ डाँक सोहाई ॥
रह्यो सोख ही रग, दोष अयदोषनि पाहीं ।
पातन ही में खरक, अधोगति मूलनि माहीं ॥

(४७)

रहे त्रिसूलहि सूल, भिषग-गेहनि खल देखे ।
पर-नारी-कर परस करत तिनहिन अवरेखे ॥
जुआ वृषभ के कन्ध, जतिन-कर दण्ड सोहाहीं ।
नर्तक-गान में भेद, बान-नृप-सासन माहीं ॥

(४८)

यदपि कबहुँ नहिं बान चोपि कै चाप चढ़ावत ।
औ कबहूँ नहिं रोषि रोष रेखा रुख लावत ॥
केवल गुन-अनुराग मानि राखत हित तासन ।
निज सिर धारत माल सरिस सब भूपति-सासन ॥

(४९)

सकल राज के काज आपु नृप-सुवन निहारत ।
सत्रु मित्र सम भाव न्याय में भूप बिचारत ॥
गुरु-आयसु लहि लग्यो रहत मख-साधन माहीं ।
प्रजानुरजन करत रहत नरपाल सदाहीं ॥

(५०)

ये ते दिवस निवास कियो सोनितपुर माही।
राजनीति मे छिद्र लख्यौ एकहु पै नाही॥
देस-काल - बल देखि नाथ! इमि मंत्र दृढ़ाओ।
सोनितपुर सो सुवन बान-नन्दिनि - युत लाओ॥

(५१)

राज-सभा मधि या विधि सों,
असुराधिप को बल वैभव गाई।
औ अनिरुद्ध-उषा के विनोद-
विहारनि की सबै बात सुनाई॥
मौन गहे चर बैठि गयो,
निज आसन पै सबको सिर नाई।
जानि विलम्ब तबै बल नै,
तेहि कौ गृह जान कौ दीन रजाई॥

पञ्चदश सर्ग

सार

(१)

दूजे दिवस प्रात ही हलधर राज - सभा मँह आये।
कुल - गुरु, सेनापति, सरदारनि, सचिवनि सवन बुलाये ॥
अन्धक, भोज, बृसनि कुल के जे अपर अमित रनधीरा ।
इमि वल को आदेस पाय तहँ आये सव जदुवीरा ॥

(२)

हरि - पद - पकज सीस नाय निज आसन वैठे जाई ।
मुख्य सचिव तव सभा वुलावन हेतु कह्यो समुझाई ॥
वोल्यो "एक चर सोनितपुर से लायो कुंवर - सँदेसो ।
सवै भाँति अनिरुद्ध कुसल हैं जनि हिय करिय अँदेसो ॥

(३)

वानासुर की सुता-सहेली लै गइ ताहि उडाई ।
अरु तेहि निज अवरोव - गेह मै रात्यो वाम दुराई ॥
निवसत कुँवर असुर - परिरञ्छित नृप - अन्तपुर माही ।
सान्त उपायनि तेहि आवन की कोउ आस अव नाही ॥

(४)

मन्त्र स्वतन्त्र आपनो या लगि दृढ विचारि कै दीजै ।
आवै वाल द्वारिका को फिरि सोई सव मिलि कीजै" ॥
सो सुनि सकल सभासद-जन - गन हरपित हिय मुसकाने ।
मानहुँ दिनमनि उदित समै लखि -पकज सर विकस्माने ॥

(५)

कह्यौ सात्यकी "कहा मन्त्रिवर यामे है कठिनाई ।
चलिए प्रात होत सोनितपुर उदभट कटक सजाई ।।
लीजै वेगि नाथ को आयसु कीजै नेकु न देरी ।
मारौ सकल दैत वसिन कहँ वान - नगर को घेरी ।।

(६)

तव हरि कह्यो "वीर सात्यकि नैं अभिमत मत्र विचारो ।
दैत्य-निकर ते वाल - मुक्ति को और नही कोऊ चारो ।।
बैठे रहे अमित वलधारी ववा पिता अरु भाई ।
परचौ रहै परवस पै वालक या मे परम हँसाई" ।।

(७)

कह्यौ रुक्म हरि वानि तुम्हारी बोलत वढि वढि वातै ।
जानत नाहि दैत्यवसिन की महा घोर रन - घातै ।।
निदरि सक्र को वज्र हरायो जिन षटमुख धनुधारी ।
लई हती जिन अमरावति की लूटि कराय अगारी ।।

(८)

जात पताल पिता - पद - परसन वान अमित वलरासी ।
धारि धरा निज हाँथ सेस के सीसनि देत उसासी ।।
अवहूँ उस्न रुधिर की धारा वहत दैत्य - तन माही ।
तिन से लरै कौन जदुबसी सो मोहि दीषत नाही" ।।

(९)

सुनि इमि परुष वैन मातुल मुख साम्त्र अमित मनमाखी ।
वलकत वैन सरोष सभा - मघि तमकि उठो इमि भाखी ।।
लोचन अरुन वक भृकुटी अरु परिघ भुजा दोउ फरकी ।
अरु ताही सँग लोह - कवच की करी करी सब करकी ।।

(१०)

"जग जदुबंस-विभूषन पूषन जहँ कहुँ करत उजेरो ।
नहि रहि जात अतक नैकु तहँ कैसेहु तम अरि केरो ॥
वीर धुरीन धीर जादव जन लसत सभा के माही ।
पै तिनके गौरव की मातुल ! कानि करत कछु नाही ॥

(११)

भूलि गयो जदुवंसिन को बल भयो न काल घनेरो ।
कीन्ह्यो व्याह वडे भैया को मर्थ्यो मान इन केरो ॥
निदरि पिता सिसुपाल सघातिन गह्यो मातु को पानी ।
पै मातुल को सुधि नहि आवत बोलत अनुचित बानी ॥

(१२)

पितु-पद-सपथ कहत पन करि कै जो निज तेज सम्हारौं ।
सकल सहाय सहित वानासुर निदरि समर महँ मारौं ॥
अपने क्रोध कृसानु माहि सब सोनितपुरहिं जराऊँ ।
जम दाढ़न को फारि बन्धु अरु भाभी को गहि लाऊँ ॥"

(१३)

बिहँसि कह्यो प्रद्युम्न "जदुन की यहै रीति चलि आई ।
टीक्यो चरन अँगूठा सो जिन तिन पाई प्रभुताई ॥
छलि कै गई उड़ाय बन्धु को बाना-सुत-सखि कोई ।
जदुवंसिन की याते जग में कहाँ हँसाई होई ॥

(१४)

अब लौं समाचार भ्राता को कौहू विधि नहि पाये ।
ब्याज-सहित बदलो सब वाको देखौ लेत चुकाये ॥
अकिलो जबै समर अगन में बान सरासन जोरौं ।
निसित विसिख की प्रबल धार में बान-चमू-चय बोरौं ॥"

(१५)

कह यादव-सेनप हलधर सों "जानी वान वडाई।
हो तो वडो वीर तौ पितु को लावत क्यो न छुडाई॥
कीजै नेकु विलम्ब नाथ! जनि दीजै मोहि रजाई।
वाँध्यो वटु नै वलिहि आजु मैं वानहि वाँधौ जाई"॥

(१६)

सुनि इमि वलकत वचन सवनि के उद्धव तिनहिँ निवारी।
परम सान्त गभीर गिरा इमि वोल्यो वलहि निहारी॥
"नाथ! असुर सघाती ऐसे सहजहि वचे न जैहै।
अपर पहारी भूप समिटि के तासु सहायक ऐहै॥

(१७)

रोगनि माहि प्रवल जिमि जग मैं राजछमा कहँ, मानौ।
तैसेइ आपु दैत्य-वसिन महँ वानासुर को जानौ॥
चलिए अवसि नाथ! सोनितपुर गज-रथ-वाजि सजाई।
देखिए किते सहायक वाके जुरत तहाँ पै आई॥

(१८)

तव निज पच्छ-वलावल कौ गनि करिय समर मनरोखी।
कै निज सुवन छुडावन कै हित सन्धि सोचिए चोखी॥
विन सोचे समझे फल आगम करत काज वुध नाही।
सफल होत नहि विना विचारे काज किये जे जाही॥

(१९)

अवसि सैन निज साजि लीजिए सोनितपुर को घेरी।
अरु अनिरुद्ध छुटावन के हित कीजै समर दरेरी॥
जे भय मानि देत कर तेऊ भूप उतै चलि ऐहै।
होतै युद्ध-अरम्भ सत्रु अरु मित्र दोऊ खुलि जैहै"॥

(२०)

इमि नयनिपुन साधु उद्धव नैं जब नृप-नीति बखानी।
बिहँसे सारँगपानि बात पै बल हि न नैकु सोहानी।।
बोल्यो बलकि "बहुत दिवसनि सौं जदुकुल की तरवारी।
लही नाहिं करि-जलद-घटा पैं छटा दामिनी वारी।।

(२१)

अब यह किलकि समर-चण्डी लौं असुरन को दल खाई।
काटि कटीली कटक काल को देइ कलेऊ जाई।।
यहि विधि विमल वस अवतमी रहत काछनी काछे।
जुआ जुद्ध में भूलिहु कबहूँ धरत नही पग पाछे।।

(२२)

या ते सारँगपानि यहै अनुरोध निदेस हमारो।
रन-हित सजैं सबै जादव फिरि प्रगटै भानु उजारो।।"
युद्ध-सचिव अरु सेनापति को बल इमि आयसु दीन्ह्यो।
पुनि करि सभा विसर्जन हरि-सँग गवन भवन को कीन्ह्यो।।

(२३)

चहल पहल सिगरी निसि बीती नींद परी नहि काहू।
राजकुमार छुरावन के हित सब हिय अमित उछाहू।।
परो निसाननि घाव प्रात ही सेन सोनपुर धाई।
दहल्यो कमठ, सेष फन काँप्यो रवि रज गयो छिपाई।।

(२४)

करत सिविर निसि माहि प्रात ही पुनि उठि करत पयानो।
चलत चलत या विधि केतिक दिन सोनितपुर नियरानो।।
लसत कुधर के उच्च सृंग पर बानासुर रजधानी।
ताके गगन - परस - मन्दिर पैं अरुन धुजा फहरानी।।

(२५)

बाहर नगर पवन जल-थल को जहँ सब भाँति सुपासू ।
सकल सैन ठहराय तहाँ ही हलधर कियो निवासू ॥
होतहि प्रात मिहिर से बल ने अक्रूरहि बुलवाई ।
अरु तिनही के हाथ बान ढिग दियो सँदेस पठाई ॥

(२६)

"करि बहु कपट मंत्र-बल कीन्हों राजकुमार चुराई ।
होत कहा बानासुर राउर कुल याही मनुसाई"
डारि देहु याते ऊषा को राजकुँवर सँग फेरी ।
वधू भई तनया नृप तेरी अब जदुवंसिन केरी ॥

(२७)

याते भूप अनत दुहिता को ब्याहन को न विचारो ।
सम्बन्धी के नाते येतो मानहु कहो हमारो ॥
भयो कृतारथ दैत्य-वंश सब हम सों जोरि सगाई ।
ब्याहो सुता चरन परसो अरु राखो सदा मिताइ ॥

(२८)

कबहुँ करिनि की ओर गमन लगि सठ सियार को जायो ।
त्यों मिहिर देखन को साहस कबहुँ ससा कहँ आयो ।
सकत राहु कहुँ सम्भु-सीस के ससि पै दीठि लगाई
अथवा पुरोडाश को रासभ सकत कतो हूँ खाई ।

(२९)

निज बल-दर्प माहि परिकै जो मानो कहो न मेरो
निहचै अन्त आय गो भूपति सकल दैत्य-कुल केरो
रच्छा करौ प्रजा परिजन की विमल बुद्धि मन
अथवा आय समर-अगन मे स्वागत करौ

(३०)

लै अक्रूर सँदेसो वल को गयो वान - रजवानी।
ह्वै कै निपट निसक सभा में नृप सो कह्यौ वखानी॥
सुनि इमि अजुगुत वैन तासु मुख अति अचरज मन मानी।
वोल्यो जलद - गभीर - घोर-रव भूप कडकि इमि वानी॥

(३१)

"कव से वढे कहाँ जदुवसी राजा कवै कहाये।
वल के पिता मातु कारागृह केते वर्ष विताये॥
जोतत रहे खेत हलघर, हरि रहे चरावत गाई।
चोर कर्म मे निपुन दियो हरि चोरी मोहि लगाई॥

(३२)

ह्वै के ग्वाल - वस के वालक करत लाज कछु नाही।
कस्यप-कुल-कन्या-कर चाहत हिय नहि नेकु सकाही॥
दै छछिया भरि छाँछ पिता को वृज तिय नाच नचायो।
पै त्रिलोकपति हू को पितु ने नीचो हाथ करायो॥

(३३)

भटकत रह्यो कस के भय सो सव वृजमण्डल माही।
जरासन्ध के सन्मुख रन मे कवहूँ आये नाही॥
भाग्यो त्यागि प्रजा - परिजन को कालयमन के आगे।
कव से समर - धीर जदुवसी वनन धरा पै लागे॥

(३४)

जन्म जन्म ते यह चलि आई सभ्य जगत की नीती।
करिए सदा वरावर ही मे व्याह वैर अरु प्रीती॥
कहँ देवन के वन्धु सवै हम अमरपुरी अविकारी।
कहँ ग्वालन की जाति अधम जग गाय चराननवारी॥

(३५)

होतहि प्रात राज - सीमा को जो पै त्यागि न जैहैं ।
तो पै निज दुस्साहस को फल भली भाँति सौ पैहैं ।।
जदुबसिन - हित लागि तिन्हैं हम वार वार समुझावत ।
निवल अरिन पै दैत्यबस के वीर न तीर चलावत" ।।

(३६)

लै अक्रूर वान - सदेसो वेगिहि वल ढिग आयो ।
अरु सब सत्रुनगर की गाथा विधिवत हरिहि सुनायो ।।
ह्वै है अवसि जुद्ध उठि प्रातहि सब ही हिये दृढायो ।
होतहि अरुन - उदय हलधर नै सब जदुसेन सजायो ।।

(३७)

डका वजत उभय - दिसि - बीरनि वाहन - अस्त्र सजाये ।
निज निज तुग धुजा फहरावत सिमिटि समर में आये ।।
क्रौंचव्यूह रचि वान - चमूपति भयो चचु पै ठाढो ।
जूझन - हित जदुबसिन सौं रन अति उछाह हिय बाढो ।।

(३८)

इत प्रदुमन रचि गृद्धव्यूह को सेन कियो सब ठाढी ।
सुतहि छोरावन काज हिये महँ अमित लालसा बाढी ।।
हरि हलधर दोऊ पच्छनि पै आपु चचु पै सोह्यौ ।
पुच्छभाग को साम्व सम्हारचो लखि सुरनाथ बिमोह्यौ ।।

(३९)

पूरचो सख नाद सब वीरन पुनि निज धनु सन्धान्यो ।
बिषम नराच जोरि कै चापहि कोपि स्रवन लौ तान्यो ।।
तौ लगि स्रगीनाद अमित - रव सत्र कँह परचो सुनाई ।
अपर अदित्य - खण्ड मनु नभ सौं आवत परचो लखाई ।।

(४०)

राजत वृषभ, लिलार - चन्द को जटा - जूट कसि बाँधे ।
लीन्हे उग्र त्रिसूल पानि मैं डारे सारग काँधे ॥
वच्छस्थली विसाल परिघ भुज गरे अहिन की माला ।
उठत तृतीय नेत्र ते ज्वाला उत्तरीय हरि - छाला ॥

(४१)

जानि दास पै भीर सबै गन - गनपति सग लिवाये ।
करन सहाय आपने जन की सिवसकर चलि आये ॥
हर कौ निरखि तुरत बानासुर धायो स्यन्दन त्यागी ।
परसि जुगुल सिवचरन सरोरुह भयो आपु बडभागी ॥

(४२)

पूछ्यो बनि अजान हर "भूपति ! का पै सैन सजायो ।
काँपै रूठो भाग चोपि तुम जापै चाप चढायो" ॥
कह्यौ बान "प्रभु ! आजु इतै मिलि जदुबसी चढि आये ।
चाहत व्याह उषा को सुत सग चोरी मोहि लगाये" ॥

(४३)

हर कह "बान ! इन्है नहि जानत ये त्रिलोक के स्वामी ।
कैसे लरौ सामुहे इनके विधि इनको अनुगामी ॥
याते मतौ हमारौ येतो मानि अवसि सुत ! लीजै ।
विधिवत मार - कुमारहि हठ तजि व्याहि उषा कौ दीजै" ॥

(४४)

हर - पद - पकज परसि बान कह "राउर नाथ ! रजाई ।
सदा सीसधरि कीन्ही मैंने अजहूँ मेटि न जाई ॥
पै वे सेन साजि चढि आये औ रन हमें प्रचारै ।
ह्वै के दास आपके जब हम कैसे साहस हारै ॥

(४५)

चाहत नाथ सन्धि तौ पहिले उर्नाह देउ लौटाई ।
छाडौ जुद्ध-भूमि नहि तव लौ प्रभु-पद कोटि दुहाई ॥
पावौ समर वीर - गति चाहै पांव न पाछे दैहौ ।
रन मैं पीठ दिखाय सत्रु कौ कुलहि कलक न लैहौ ॥"

(४६)

सुनिके वान वचन तुरतहि हर जदुसेना महँ आये ।
हरि-वल निरखि सम्भु को आवत निज मन मोद वढाये ॥
वल सो विहँसत कह्यो "दास पै नाहक कियो चढाई ।
कुँवरहिबेगि छोराय उषा - सग दैहौं व्याह कराई ॥"

(४७)

निज कर गह्यो लगाम वाजि की स्यन्दन दियो घुमाई ।
पूरयो सख धुजा लखि जदु - जन चले सिविर हरखाई ॥
रन तजि जात जवहि हरि वल को बानासुर लखि लीन्ह्यो ।
सेना सकल समेटि मुदित मन गवन भवन कँह कीन्ह्यो ॥

(४८)

निज गृह जाय बुलाय कुमारहि पट - भूषन पहिराई ।
दै अनेक उपहार दियो तेहि पितु - ढिग मुदित पठाई ॥
कियो साथ अस्कन्द कुमारहि स्यन्दन सुघर सजाई ।
या विधि सौं अनिरुद्ध मिल्यो पुनि जदुबसिन सौं आई ॥

(४९)

परस्यो चरन प्रथम कुलगुरु के बल हरि के पग लागी ।
परयो पांय प्रद्युम्न पिता के भेंटयो साम्व सभागी ॥
ढाढो लखि अनिरुद्ध कुमारहि जदुगन मन अनुरागे ।
सजल नैन मुक्तामनि की सब करन निछावरि लागे ॥

(५०)

पूँछै कुमार सौं वाल-सखा मिलि,
  "आपु हरे गये औ तिय पाई।
पै हम लोगनि या विधि सौं,
  सहसा तुम दीन्हो कहाँ विसराई।
भूलि ही जात सबै घरवार है,
  जो पै नई कोऊ पावै लुगाई।
याते न कीजिए नेकु विलम्बहि,
  दीजै हमैं मँगवाय मिठाई"॥

—

षोडश सर्ग

रूपमाला

(१)

बढ्यो जदुजन हरख इमि अनिरुद्ध कौ अवरेखि।
सिन्धु तुंग तरंग नभ जिमि विमल विधु को देखि॥
मिलत कोऊ धाय तिहिं दरसाइ अति अनुराग।
मुदित मन कोऊ सराहत, कान्ह बल को भाग॥

(२)

जदु-सिबिर महँ रह्यो या विधि छाय अमित उछाह।
सबै चाहत लखन अब अनिरुद्ध-उषा-विवाह॥
कालि लौं जे धरत हिय में सत्रुता के भाव।
दैत्यपति सौं मिलन कौ हिय बढ्यो तिनके चाव॥

(३)

गिरि-सिखिर पै अस्व आरोही दिखान्यो एक।
ताहि आवत बल-सिबिर मैं लगी वार न नेक॥
द्वारपाल बिलोकि ता कहँ कान्ह आयसु पाइ।
लै गयो वर वीर को बल-बीर निकट बुलाइ॥

(४)

कर कमल जुग जोरि कीन्हो बलहिं प्रथम प्रनाम।
नाइ प्रभु-पद-माथ लाग्यो कहन बचन ललाम॥
"नाथ! आवत मन्त्रिवर आचार्य कौ लै साथ।
लग्न गै कीजै सबनि कँह आपु सपदि सनाथ"॥

(५)

हरिहि इमि सदेस दै निज बाजि पै चढ़ि वीर ।
गयो सोनित-नगर चर जिमि चाप छूट्यो तीर ॥
इतै आवन लग्न को सुनि मुदित सकल समाज ।
सचिव-स्वागत हेतु सब मिलि सजन लागे साज ॥

(६)

सिविर मध्य हरी जरी को तन्यो विमल वितान ।
जटित हीरन जासु छवि नभ-नखत की उपमान ॥
तहँ धरे गज-दन्त के वर मञ्च केतिक लाय ।
मनहुँ वसुधा पै दई विधि सुधा सब बगराय ॥

(७)

झालरैं करि-कुम्भ-सम्भव-मोतियन की लाय ।
लिखे स्वागत विविध रगन रहे चारु सजाय ॥
रत्न एते निरखि तँह मन रह्यो यह अनुमानि ।
रहि गयो वस अम्बुनिधि मैं आज केवल पानि ॥

(८)

मच-अवलिनि वीच तँह द्वैग मच लसत नवीन ।
मनहुँ अहिपति नीर-निधि तें कढ़ि जुग फन दीन ॥
विपुल परदे मखमलनि के रहे द्वार सँवारि ।
सुरन-चाप-विडम्बिनी-छवि धरत वदनिवारि ॥

(९)

तीसरे ही पहर तें तहँ जुरन लागे भूप ।
जटित हीरा रतन सों वर वसन साजि अनूप ॥
कुसुम-सायक सैन मानहु जगत जीतन काज ।
जदु-कुमारनि व्याज राजत साजि सकल समाज ॥

(१०)

यथा अवसर कान्ह-वल हू तहँ विराजे आय ।
मनहुँ जुग विधु व्योम की छवि अमित रहे वढाय ॥
अपर-नृप-नखतावली लौं दै अमन्द उजास ।
जदु-सभा मानहु करत आकाश कौ उपहास ॥

(११)

मनि प्रदीपन करति भूप-किरीट-छवि अतिमन्द ।
दुरत घन घनपटल मांहि निहारि नृप-मुख चन्द ॥
सरस रागन सुघर सहनाई रही तहँ वाजि ।
उग्रसेन महीप वर को चित्र राख्यो साजि ॥

(१२)

इतै दैत्य-महीप को गृह सज्यो वहु छविधाम ।
मनि प्रदीपनि की लसति चहुँ पांति अति अभिराम ॥
वान - भूपति के सगोती - सुहृद - मंत्रि - समाज ।
सजे भूषन वसन राजत जनु अपर सुरराज ॥

(१३)

सौध पै कलधौत के तहँ लसत वनिता वृन्द ।
कल्पवेलिनि की मनो सोभा बढावत चन्द्र ॥
सजे दिव्य दुकूल गातनि मधुर गावत जात ।
रूप जिनको हेरि निज हिय देव-तीय लजात ॥

(१४)

सुक्र आचारज कुभन्डक लग्न को लै साज ।
आपु गवने सिविर को जहँ लसत जदुकुलराज ॥
तिनहिं आवत देखि सात्यकि साम्ब प्रनति देखाय ।
लै गये तिनको मुदित मन कान्ह निकट वुलाय ॥

(१५)

नाय हरि-पद माथ मन्त्री लग्न दीन्हो धारि ।
अर्घ आसन पै लियो बल सुक्र को बैठारि ॥
मुदित देवनि पूजि दीन्हो तुरत लग्न चढाय ।
कह्यो "द्वारे-चार हित अब चलिए जादवराय" ॥

(१६)

वन्दि गौरि-गिरीस बारन चढे तव बलराम ।
कान्ह प्रदुमन साम्ब सात्यकि चढे अस्व ललाम ॥
बैठि सिविका में चल्यौ अनिरुद्ध गुरु पदनाय ।
साजि वाहन सग गवन्यो नृपनि को समुदाय ॥

(१७)

लेन अगवानी गये हर धरि मनोहर रूप ।
चले जुगुल कुमार हू धरि मार-भेष अनूप ॥
सचिव-सुहृद-समूह प्रमुदित कान्ह-बलहि जुहारि ।
बाल कौ गहि पानि-पकज लियो अवनि उतारि ॥

(१८)

पाँवडे महि परन लागे धारि तिन पै पाँय ।
त्यागि वाहन प्रमुख जदुजन चले प्रमुदित जाँय ॥
बान कै "समधौर" हरि, बल, कौ भुजा भरि भेटि ।
दियो गज-मनि-माल आनँद मनहु अमित समेटि ॥

(१९)

लवा बरसावन लगी तब सौध मो वर नारि ।
कलित-कोकिल-कण्ठ सों पुनि गायकै मृदु गारि ॥
आरती अनिरुद्ध की करि अर्घ दै तब सासु ।
करी परछनि तियनि मिलिकै भयो हास विलासु ॥

(२०)

द्वारचार समापि जदुजन सिविर महँ पुनि आय ।
कियो भोजन विविध विधि विसराम पुनि सुख पाय ॥
होन लाग्यो गान बाजे बीन मुरज मृदंग ।
निरखि गायन-निपुनता गंधर्व को मद भंग ॥

(२१)

उतै मनिमय पाट पै वर वधू को बैठाय ।
कलस थाप्यो सुक्र तहँ पुनि नवो ग्रहनि तुलाय ॥
बहुरि राजकुमार को तिन ग्रन्थि बंधन कीन्ह ।
अनल को प्रगटाय ता महँ सविधि आहुति दीन्ह ॥

(२२)

हवि-समी-पल्लव-लवा-घृत-धूम उठ्यो अपार ।
लग्यो लोयनि माहि तिय की बही अँसुवनि-धार ॥
मनहु लावनिता जबै वर गात मैं न समानि ।
बही अँसुवनि व्याज सो अँखियानि के मग आनि ॥

(२३)

पूजि जामाता-चरन सह बाम बान महीप ।
पुनि विरोचन-तीय जुत पद गहे आय समीप ॥
पिय-वियोगनि-छीन बलिविन्ध्या तहाँ पुनि आय ।
पाँय पूज्यो प्रेम सो अँसुवा अमित बरसाय ॥

(२४)

भरत भाँवरि अनल चहुँदिसि वधू बर यहि भाँति ।
मेरु को जनु देन फेरयो मुदित मन दिन राति ॥
राजवंसनि के पुरोहित करत साखोच्चार ।
लखत हरषित हीय सब मिलि इमि विवाह-बहार ॥

(२५)

पकरि वर कौ पानि पकज कछुक मृदु मुसकाय ।
लै गई सखि तिनहि हास अवास माहि लिवाय ॥
बाल-बालम कर सरोजनि एक साथ मिलाय ।
मनहुँ दम्पति-प्रीति या मिसि दियो आलि दृढाय ॥

(२६)

करि प्रथम सहवास त्रिनये तिन किते दिन रात ।
तऊ प्रेमिन को हियो नहि काहु भाँति अघात ॥
नवल दम्पति को सुनो है कतहुँ कोउ परितोख ?
होत प्रेम-पयोधि की है कतहुँ नाप न जोख ॥

(२७)

छुवत तिय की पानि पिय को कण्टकित भो गात ।
भई सुन्नागुलि वधू कछु दसा वरनि न जात ॥
मनहु मदन-महीप-मनि मन मानि अति अनुराग ।
कियो तिन में आपनो चित्त-वृत्ति को समभाग ॥

(२८)

अरि-सँहारन माहि अति पटु रह्यो वर को पानि ।
वधू कर-कचन-प्रभा को हरत करत न कानि ॥
यान नृप के राज इन कहँ सकत को अवराधि ।
लियो मण्डप माहि याते कुसुनि कन्कन बाँधि ॥

(२९)

पाय सखिन-सकेत वाम सरोज-दाम सँभारि ।
दई कम्पित करनि सों अनिरुद्ध के गर टारि ॥
परत वाके कण्ठ व्राट्यो वाढ-मदन-विकास ।
मनहुँ उपा-कुमारि की लघु-भगिनि की भुज पास ॥

(३०)

दियो सिंदुर उषा-सिर अनिरुद्ध तब हरखाय ।
भाँति काहू कविन पै उपमा कही नहिं जाय ॥
मनहु अरुन पराग कहँ अहि कमल-कोष सँभारि ।
अमिय पावन काज सौं बर बिधुहिं रह्यो सँवारि ॥

(३१)

इमि बिवाह समापि आयो कुँवर पुनि जनवास ।
सखागन मिलि करत तासों बिबिध-बिधि परिहास ॥
सकल निसि जागरन सो है अरुन जाके नैन ।
बाल आलस सो बलित ह्वै करन लाग्यो सैन ॥

(३२)

छीन-छबि बिधु भयो नभ पै चढी लाली आय ।
सूत मागध बिमल जदुकुल-बिरद रहे सुनाय ॥
त्यागि सेजनि जदुन कीन्हो प्रात-कृत्ति समाप ।
बजी सारंगी परी तबलानि पै पुनि थाप ॥

(३३)

साजि गायक तानपूरो भरे अति अनुराग ।
भैरवी आसावरी के लगे गावन राग ॥
आयगो तौ लौ उतै नृप गेह ते जलपान ॥
भाँति भाँतिन के सलोने अरु मधुर पकवान ॥

(३४)

पाय षटरस दिव्य भोजन बहुरि खाये पान ।
सोय पुनि परयंक कीन्हो इमि दिवस अवसान ॥
त्यागि नींदहिं न्हायकै पुनि कियो फल आहार ।
गये देखन बहुरि जदुजन पर्वतीय बहार ॥

(३५)

लौटि डेरनि टहरिवे को कियो तिन स्रम दूरि।
पियो ठडाई, वनी मानहु सजीवनमूरि ॥
कियो पुनि बिसराम या विधि कछुक वीती वार।
वोलि पठयो करन हित नृप तिनहि जीवनवार ॥

(३६)

गये जादव मुदित नृप गृह कछुक वीती राति।
कनक थारनि मैं परोस्यो व्यजननि वहुभाँति ॥
लगी गारी देन वनिता सुनत वल मुसुकात।
करत अमित विलम्व प्रमुदित सरस व्यंजन खात ॥

(३७)

तिनहि पुनि अँचवाय दीन्हो सुवा-स्यदित पान।
कियो डेरनि ओर जदुजन हँसत हँसत पयान ॥
सोय निज पर्जंक पै प्रमुदित विताई राति।
करी पहुनाई नृपति नै कितिक दिन यहि भाँति ॥

(३८)

यदपि सब चाहत वराती नगर लौटन हेत।
प्रेम-पासनि वाँधि वल कहँ वान जान न देत ॥
गर्ग तव कह सुक्र सन "तुम नृपहि वेगि वुझाय।
कन्यका की विदा प्रातहि सपदि देहु कराय ॥"

(३९)

जाय वान महीप के ढिग सुक्र कह्यो वुझाय।
"देस लौटनि-हित वरातहि भूप ! देहु रजाय ॥"
मानिकै गुरु-वैन अन्तपुरहि दीन्ह कहाय।
"विदा ह्वै कै, प्रात जैहैं नगर जादवराय ॥"

(४०)

पाय नृपति-निदेस जदुजन विदा ह्वैवे हेत ।
जुरे सब मिलि आय निसि महँ बहुरि भूप-निकेत ।।
जथाथल बैठारि सब कहँ जल गुलाब सिचाय ।
दियो चारु तमोल सबके अंग अतर लगाय ।।

(४१)

बहुरि दोऊ कर जोरि बल की बान विनती कीन ।
"सोनपुर के प्रजा परिजन रावरे आधीन ।।
नेह को नातो निबहियो सदा हम सों नाथ ।
दैत्य-कुल-मर्याद है अब प्रभु ! तुम्हारे हाथ ।।"

(४२)

अमित हय - गज - दास - दासी-धेनु-बसन नवीन ।
रत्न - मन - मण्डित-विभूषन बान दायज दीन ।।
स्वादुमय अतिसै सलौने मधुर-मृदु - पकवान ।
भेंट औ पहिरावनी दै कियो नृप सनमान ।।

(४३)

प्रात जात बरात यह सुधि लही जब रनिवास ।
भई बिबरन तीय मनहुँ मयंक रहित उजास ।।
सुनत ऊषा की सहेली, गई इमि कुम्हिलाय ।
बनज-बन पै सघन पालो परो मानहु आय ।।

(४४)

परी निसि नहि नींद मातहि, कहत "धिकधिक नेहु ।
चहौ जो विधि करहु पै जग जुवति जनम न देहु ।।
मेइ पालि सुनाहि जो पर - हाथ इमि दै देन ।
होन है मातानि को दुहितानि पै कस हेत ।।"

(४५)

बिदा करि यहि विधि बरातिन बान आयो गेह ।
देखि रोवत ऊषहि बाढ्यो तासु जनक-सनेह ॥
इतै गुरु-तिय प्रेम सों तेहि गोद में बैठाय ।
कह्यो गदगद बैन या विधि भूप-धियहि सुनाय ॥

(४६)

"सेइयो गुरु जननि, रखियो सौति हू सों प्रेम ।
सासु-पद-पंकज-छुवन को सदा रखियो नेम ॥
बोलियो मृदु बोल, करियो सबन्हि को परितोष ।
भूलिकै दासीनि हू पै कीजिए जनि रोष ॥"

(४७)

आयगो अनिरुद्ध तहँ, कंकन छुरावन-काज ।
रोचना सिर भेंट ता कहँ दीन जुवति-समाज ॥
हाथ वाके सौंपि दुहितहि सासु बिनती कीन ।
"कृपा या पै कीजियो, या सुता तव आधीन ॥"

(४८)

परी डंकनि चोट गवने नगर जादवराय ।
लौटि आयो बान निज कँह दूरि लौं पहुँचाय ॥
द्वारिका मँह आय पहुँची इतै मुदित बरात ।
करन परछनि रानि रुक्मिनि प्रेम हिय न समात ॥

(४९)

लै गई ऊषहि महल में, मुदित सासु उतारि ।
मंजु आनन लखन चहैं जहँ जुरी बहु बर नारि ॥
मनहुँ मुँहदिखावनी मँह रति अमित अनुराग ।
सासु सौंप्यो मदन, पिय मन समुझि सौंति सोहाग ॥

(५)

होन लग्यो इमि सोक मातु-पितु-हिय तें दूरी ।
सक्यो विरोचन पै न भूलि निज जीवन-मूरी ॥
सिसुगन तें तेहि ललकि गोद लै समुद खिलाई ।
चख-पुतरी लौ राखि चाव सों लाड लडाई ॥

(६)

बाँधि आस की पास भूप निज प्राननि राख्यो ।
ऐहै सावन माहि सुता यह मन अभिलाख्यो ॥
विदा करावन काज बान अस्कन्द पठायो ।
पै ह्वै हीय निरास लौटि नृप-नन्दन आयो ॥

(७)

सुनि नहि आई सुता विरोचन लाग्यो ऊबन ।
करुना-पारावार माहिँ लाग्यो मन डूबन ॥
सिथिल भयो अभिलाष-बंध इमि भई निरासा ।
लोगन दीन्ही त्यागि तासु जीवन की आसा ॥

(८)

दारुन-दीरघ-सोक भूप को औरहु बाढ्यो ।
सुमिरि सुवन की दसा रहत निसि-दिन जिय दाढ्यो ॥
करत जज्ञ सो काज जाय बाँधो सुत जाको ।
या जग मैं रहि गयो भला जीवन कहँ ताको ॥

(९)

छूट्यो राज-समाज और बिरधापन आयो ।
समरथ भयो न बान रह्यो तब लौ दुचितायो ॥
सोनितपुर में आय जबै थापी रजधानी ।
कछुक कछुक तब कहूँ भूप-हिय-आगि बुतानी ॥

(१०)

तप साधन हित वनहि जान गुरु आयसु माँगी ।
करि आग्रह पग पकरि बान रोक्यो अनुरागी ॥
रहियो कछुक दिन और मोहि नृप-नीति सिखैये ।
ब्याहि उषा स्कन्द साथ कानन तब जैये ॥

(११)

लखि बालक-अनुरोध भूप नहि वनहि सिधाये ।
सिव-पद-पंकज ध्याइ घरहि रहि काल बिताये ॥
गृह - कारज - जंजाल अपर चिंता बहुतेरी ।
कास, स्वास, अरु जरा लियो नरपति कहँ घेरी ॥

(१२)

दमा जात दम साथ कहत सब लोग लुगाई ।
दुर्बल नृप कहँ लियो काल गहि रोग दबाई ॥
कियो अमित उपचार देव-बैदनि मिलि दोऊ ।
पै निरोग करि सके नाहि भूपति कहँ सोऊ ॥

(१३)

कह्यो बान सन "अमर नहीं कोउ या जग माहीं ।
होत रोग-उपचार मीचु की ओषधि नाहीं ॥
अब केवल नभ - गंग - वारि - तुलसीदल दीजै ।
अपर ओषधिन देन नाम बस भूलि न लीजै ॥

(१४)

चलन चहत सुरधाम प्रान ओषधि गहि राखत ।
याते कष्ट अपार होत यह सब जन भाषत ॥
अब करिकै संतोष अपर जनि मंत्र बिचारो ।
जात बत्स परलोक आपु धीरज हिय धारो ॥

(१५)

पुनि अस्विनीकुमार-बैन नृप भयो उदासा।
दियो छाँडि तब वृद्ध-बबा-जीवन की आसा॥
चलत न कोऊ उपाय दैवगति गुनि हिय हारे।
ह्वै निरास तब दैत्य-भूप बैठ्यो मन मारे॥

(१६)

बढ़त स्वास कौ वेगि निसा मँग सबनि निहारयौ।
लखत बबा बेचैन बान अँसुआ दृग ढारयो॥
इमि लखि बैद्य बिहाल ताहि चन्द्रोदय दीन्ह्यो।
घट्यो रोग को वेग खोलि नृप नैननि लीन्ह्यो॥

(१७)

पुनि कछु करि सकेत बान-नन्दन बुलवायौ।
एकटक ताहि निहारि नैन अँसुआ बरसायो॥
फेरयो सुत सिर पानि बान लखिकै हरखान्यो।
पै अस्विनीकुमार अमित हिय में सकुचान्यो॥

(१८)

धरयो माथ पै हाथ लग्यो हिम सीतल सोई।
सन्निपात सीताङ्ग पसीननि गात समोई॥
देव-वैद्य कह "इन्हैं मही पर लेहु उतारी।
कोहूँ ढूँढे मिलत नाहि नरपति कै नारी॥"

(१९)

यह सुनि नृप कह बान तुरत महि पै पौढायौ।
एक घूँट जल दियो गरो कफ सौ भरि आयो॥
खुले विरोचन नैन और हुचकी एक आई।
घूमी नृप की दीठि गई अँखियाँ पथराई॥

(२०)

या विधि उत तनु त्यागि गयो सुरधाम विरोचन ।
करुनारस की मूर्ति लगी रानी हिय सोचन ॥
करत विलाप-कलाप सबै घर लोग-लुगाई ।
पै न आँसु की बूँद भूप-जाया-दृग आई ॥

(२१)

समाचार सुनि गेह गुरु आचारज आयौ ।
बहु विधि सबनि प्रबोधि बान कहँ धीर धरायौ ॥
होनहि प्रात बनाय यान नृप को सब धारी ।
क्रिया करन सब चले चली नृपनारि पछारी ॥

(२२)

करि गुरु अमित उपाय रहे रानी-मन फेरत ।
जात सिंधु-दिसि सरित कोऊ सावन की घेरत ?
भूषन बसन सँवारि बाम सुरधाम सिधारी ।
सेवत पतिहि सदैव त्रिजग पतिबरता नारी ॥

(२३)

दहन-जनित-तन-ताप तियहि नहि उतो सतावत ।
विरह वह्नि ज्यहि भाँति बाम को हियो जरावत ॥
कहा जगत सों काज जात जब पिय सुरपुर को ।
याही रह्यो विचार भूप-जाया के उर को ॥

(२४)

इतै सरित ढिग जाय सबै चुनि चिता बनाई ।
चन्दन-अगर-कपूर और घृत-घट बहु लाई ॥
चढ़ी स्वर्ग-सोपान रानि धरि नव पद्मासन ।
लखि तिय-हिय-अभिलाष भयो प्रज्वलित हुतासन ॥

(२५)

लागी वधकन चिता पवन को वेगहि पाई ।
अरु चढि अनल-विमान रानि सुर-सदन सिधाई ॥
लस्यो बाम को वदन तवै यहि भाँति अतूल्यो ।
मानहुँ पावक-पुंज माहि पंकज कोउ फूल्यो ॥

(२६)

यहि विधि क्रिया समापि न्हाय जल-अंजलि दीन्ह्यो ।
पुनि दसगात्र-विधान वेद-स्रुति-सम्मत कीन्ह्यो ॥
भये सुद्ध दस दिवस वितै गुरु-आयसु पाई ।
दियो दान गज-वाजि - धरा-धन - भूषन - गाई ॥

(२७)

सोधि दिवस सुभ वहुरि बान बैठ्यो सिंहासन ।
लग्यो करन वहोरि पूर्व इव निज अनुसासन ॥
पै वा मे नहि लगत चित्त अवनीपति केरो ।
सहसा जग्यो विराग बान हिय माँहि घनेरो ॥

(२८)

तब नृप सुतहि विवाहि राज सौंप्यो कर ताके ।
भये नाँह अस्कन्द राजनन्दनि वसुधा के ॥
जा हित अनुचित करत काज अगनित नृप बालक ।
पितु-अदेस सौं बन्यो बाल ताको प्रतिपालक ॥

(२९)

कियो सुक्र अभिषेक भयो नृप वैरिन दुर्गम ।
ब्रह्म - छात्र धौं तेज किधौं अनलानिल-संगम ॥
भोग्यो दीरघ-बाहु नृपति पितु सौं लहि धरनी ।
होय न वल सौं खिन्न जथा व्याही नव रमनी ॥

(३०)

ज्यों चतुरानन संग मुदित राजत बरबानी ।
ज्यौं सोहत कैलास संग सिव संग भवानी ॥
ज्यौ सुरेस सँग सची, रमा हरि के सँग राजैं ।
त्यौं अस्कन्दकुमार संग जाया छवि छाजैं ॥

(३१)

भूधर चौदह भुवन बने हिम-नग-मदहारी ।
जिन पैं सुकृति-बलाहक बरसत नित सुखवारी ॥
रिद्धि-सिद्धि-सम्पति सरित बडी अति सैं उमगाई ।
करत कलित कल्लोल सोनपुर-सागर आई ॥

(३२)

जा बर बस प्रसंस प्रजा मनि - मानिक ऐसी ।
सोम-कला सी बढत भूप जस कीरति तैसी ॥
कतहुँ न दुख को लेस चहूँ सुख सम्पति रूरी ।
नित नव मंगल मोद रहे सोनितपुर पूरी ॥

(३३)

सब विधि रञ्छित प्रजा जासु के सासन माहीं ।
काहू दिसि नाँ रह्यो कतहुँ कोऊ भय नाहीं ॥
सोवत बगिया माहि बार-बनिता कोउ प्यारी ।
सकत न चंचल पवन तासु पट नेकु उघारी ॥

(३४)

नगर माहि कँहु लसत ललित उद्यान सुहायो ।
जहँ बसन्त रितु रहत बारहू मास सोभायो ॥
नाचत कतहुँ मयूर कहूँ कल कोकिल गावत ।
त्रिविध समीरन बहत त्रितापनि हरि भगावत ॥

(३५)

सोइ वाटिका माहि सम्भु-मूरति इक सोहति ।
गौरि चकित रहि जाति जबै वाकी दिसि जोहति ॥
ताको भाल-मयंक छटा यहि विधि छिटकावत ।
कैसेहु काहू ठाम निसा-तम दुरन न पावत ॥

(३६)

जात कहूँ पिय-धाम वाम सुक्ला अभिसारी ।
भूषन जटित जराय जरे पहिने सित सारी ॥
मिली जोन्ह मैं बाल कहूँ नहि परत लखाई ।
अम्बर-विधु की करत जात यहि भाँति हँसाई ॥

(३७)

गमकत कतहुँ मृदंग बीन बाजत कहुँ रूरी ।
जलतरंग की तान रही काननि मैं पूरी ॥
"होरी ध्रुपद" अलापि कहूँ वर-गायक गावत ।
ताही को अनुहारि तमूरा मधुर बजावत ॥

(३८)

यहि विधि बिपुल बिलास रहत नृप-सासन माही ।
सुख सों बीतत वर्ष होत चिन्ता कछु नाही ॥
हिय के सब अभिलाष प्रजा मन मुदित पुरावत ।
नृप की दीरघ आयु काज हर-गौरि मनावत ॥

(३९)

नृप को आदर-पात्र सबै अपने को मानत ।
सिन्धु-भूप यहि भाँति प्रजा-सरितनि सनमानत ॥
गहे मध्य-गति अपर नृपत बल पाय दबायो ।
राजनीति अवलम्बि सबनि पालन मन लायो ॥

(४०)

उत नृप गुरु-पद वन्दि तजन गृह आयसु माँगी ।
चल्यो वनहि तप करन सकल भव-फन्दनि त्यागी ॥
पै करि अति अनुरोध जान दीन्ह्यो सुत नाही ।
पुर बाहर रचि पर्नसाल निवस्यो तेहि माहीं ॥

(४१)

हट्यो पुरानो भूप नवल नरनायक आयो ।
रवि-ससि-युत नभ-सरिस राज-कुल सो दरसायो ॥
धरे जती - नृप - रूप वान - अस्कन्द सयाने ।
भक्ति-मुक्ति-फल-युक्त धर्म - जग - अग लखाने ॥

(४२)

याही परिनत वैस माहि निज चाप बिहाई ।
धारत वलकल वसन दैत्य - वसज - नरराई ॥
त्यागि लोक-सम्बन्ध सकल इन्द्रिन गति बाँधत ।
कानन करत निवास मुनिन हित सिव अवराधत ॥

(४३)

नय-पटु मन्त्रिन मिल्यो भूप दृढ़वन निज राजै ।
मिल्यो जतिन सों वान परम - पद पावन काजै ॥
जन-रञ्जन - हित लियो नवल नरपति सिंहासन ।
इतै ध्यान हित लियो वान भूपति दर्भासन ॥

(४४)

जीते केतिक नृपनि भूप निज बलहिं बढ़ाई ।
प्रानादिक तन पवन समाधिहिं वान लगाई ॥
बैरि - वृन्द - अभिलाप नृपति निज तेजनि जार्यो ।
उत भव-कर्म - कलाप वान ज्ञानानल जार्यो ॥

(४५)

पाल्यो नृप कर्तव्य न फल जौं लगि दरसाये।
तज्यो बान नहिँ जोग ब्रह्म दर्शन बिनु पाये॥
कीन्ह्यो इन्द्रिय - दमन बान, इत नृप आरातिन।
निज निज काजन लही सिद्धि दोहुन सब भाँतिन॥

(४६)

इमि पुर बाहिर निवसि बान कछु काल बितायो।
बहुरि उग्र तप करन सघन वन माहि सिधायो॥
सम्भु-सैल करि पार मानसर के ढिग जाई।
लग्यो करन तप घोर भूप पचाग्नि जराई॥

(४७)

खडो एक पग रह्यो ब्योम दिसि हाथ उठाये।
सिव सिव निज मुख कहत भानु दिसि दीठि लगाये॥
यहि बिधि करि तप घोर दिवस बितये नर-त्राता।
गयो सुखाय सरीर सहत हिम-आतप-बाता॥

(४८)

सिमट्यो ललित - ललाट वक - बिधु को मदहारी।
पैठे लोचन लोल डरत अरि जिनहि निहारी॥
मुरझ्यो मुख अरविन्द रही नहि नेकु लुनाई।
सूखे कलित कपोल खीन सब गात लखाई॥

(४९)

जा भुज सौं धनु खैंचि सम्भु-सुत को मद झार्‌यो।
सोभा जासु बिलोकि सुधर करिकर हिय हार्‌यो॥
लागे भस्म-विलेप भई सोऊ अति रूखी।
अच्छमाल के सहित गई सर लौं वह सूखी॥

(५०)

सूखि गयो नृप गात विसाल,
रही ठठरी तन में अवसेखी ।
फोरि कै ब्रह्म को रन्ध्रहि प्रान,
मिल्यो सिव सकर में सविसेखी ।
यौं तनु जोग की आगि में जारि,
गयो सिव-धाम बनौ हर-त्रेखी ।
त्यौंही दवागिन-ज्वाल की मालनि,
कानन मैं बनचारिन देखी ॥

अष्टादश सर्ग

चौपाई

(१)

दोहा—इत अस्कन्द महीपमनि, राजनीति हिय लाय।
बितये केतिक वर्ष इमि, प्रजा पलि सुखपाय ॥

एक दिवस नृप के मन आई।
प्रजा-राज अवलोकहुँ जाई ॥
अमित मास बीते पुर माही।
धरती - कूत करी कछु नाही ॥
अरु नहि पसुन निरीछन कीन्ह्यो।
गामनि पै कछु ध्यान न दीन्ह्यो ॥
अस गुनि नृप मन्त्रिन बुलवायो।
निज विचार तिन सबनि सुनायो ॥
सचिव मुदित मन सुनि नृप-वानी।
मनु कुसुमित भइ लता सुखानी ॥
तिन नृप - मत - अभिनन्दन कीन्ह्यो।
"जाइय अवसि भूप" कहि दीन्ह्यो ॥
राज भार मन्त्रिन कहँ दीन्ह्यो।
प्रमुदित भूप गवन तब कीन्ह्यो ॥
दोउ तियनि दासनि लै साथा।
अरु कछु सैन सज्यो नरनाथा ॥

(२)

दोहा—सेवक सैनिक साहसी, सम वय सुभट सुजान।
राजकर्मचारीनि लै, कियो भूप प्रस्थान ॥

प्रथम अग्रगामी दल जाई ।
सुखद सिविर बहु रचे बनाई ।।
अरु दीन्ह्यो सब साज सँजोई ।
जाते कष्ट होइ नहि कोई ।।
चरमुख सकल ग्राम के वासी ।
आवत सुन्यो नृपति सुखरासी ।।
भूप दरस हित अमित उछाहू ।
चले लेन सब लोचन - लाहू ।।
दधि, नवनीत, दूध, तरकारी ।
लाय सिविर फल मूलनि धारी ।।
राखन काज मान तिन केरो ।
प्रजा - भेंट सेवक नहि फेरो ।।
पै गुनि नृप - अदेस मन माही ।
दीन्ह्यो वस्तु - मूल्य सब काही ।।
विगत - दिवस नरनायक आये ।
स्वागत सब मिलि कीन्ह सुहाये ।।

(३)

दोहा—दिजन दियो आसिष मुदित, क्षत्रिन परसे पाँय ।
दई भेंट वैस्यन सुघर, सादर सीस नवाय ।।

पथ-स्रम नृप निसि सोय गँवाई ।।
प्रातहि जगे दैत्य - कुल - राई ।।
नित्त-क्रिया करि सिव-पद ध्याई ।
देखन ग्राम चले नृप पाई ।।
सचिव - सुभट - सेवक कछु साथा ।
गनिहि सग लीन्ह नरनाथा ।।
मुखिया चल्यो चरन सिर नाई ।।
गुरुकुल नृपहि दिखायो जाई ।।

सुनि वटुमुख नरपति को आवन ।
सादर कुलपति चले लेआवन ।।
आसिष दै भीतर लै आये ।
जहाँ पढत वटु - बृन्द सोहाये ।।
पूछ्यो नृप कुलपति दिसि हेरी ।
है सब कुल आस्रमनि केरी ।।
मिलत निवार कुसा तुम काही ।
चरत ग्राम पसु तौ तिन नाही ।।

(४)

दोहा--कह गुरु दैत्य-महीप कर, जहँ लगि तपत प्रताप ।
कुसल सकल, तासीन को सकत कौन दै ताप ।।

लै गुरु नृपहि गयो तेहि ठामा ।
जहँ बटु-बृन्द पढत यजु-सामा ।।
मनहुँ देवगन सकल सोहाये ।
विद्या पढन सम्भु - गृह आये ।।
बटु दिसि देखि सचिव कछु भाख्यो ।
सस्वर साम सुनन अभिलाख्यो ।।
गुरु रुख लखि कछु वटु हरखाई ।
लागे पढन रिचा सुख पाई ।।
सुनत सँतोष नृपति मन मान्यौ ।
साधु साधु कहि गुरु सनमान्यौ ।।
अपर भवन गवने नर - राई ।
गुरु वैद्यक जहँ रह्यो पढाई ।।
ज्यौतिष भवन बहोरि पधारे ।
रवि - मण्डल जनु अवनि उतारे ।।
मल्ल - गेह गवन्यो नर - पालक ।
जँह व्यायाम करत सब वालक ।।

(५)

दोहा—गदा, परसु, असि, कुन्त, युध, तहाँ लख्यो नरनाह ।
जल थम्भन देख्यो बहुरि, भरि हिय अमित उछाह ॥

लख्यो पुस्तकालय बड़भारी ।
वाद - विवाद सुन्यो सुखकारी ॥
कन्या - गुरुकुल रानी देखी ।
भयो हिये सतोष विसेखी ॥
तिन सब कहँ परितोषिक दैके ।
फिर्यो भूप गुरु - आसिष लैके ॥
ग्राम-दसा इमि सकल निहारी ।
ओषधि - भवन लख्यो दुखहारी ॥
वैद्य मनहुँ अस्विनीकुमारा ।
करत कठिन रोगनि - उपचारा ॥
सुभट स्वयम - सेवक - दल देख्यो ।
सस्था कितिक अपर अवरेख्यो ॥
ग्राम - कोष पचायत जाई ।
बहुरि कोठार लख्यो नरराई ॥
बीज - बखार केर जो लेखा ।
सब निज नैन महीपति देखा ॥

(६)

दोहा—खेती सारे ग्राम की, सब निरख्यो नरनाह ।
कृषिकन कौ दुख-सुख सुन्यो, मन महँ अमित उछाह ॥

गुनि सव्यान जानि तम पाई ।
भूपति चले सिविर हरखाई ॥
अरु ग्रामीन हुते सँग जेते ।
निज निज गृहनि गये मिलि ते ते ॥

सिविर आय नृप भोजन कीन्ह्यो ।
अरु विश्राम जथा-रुचि लीन्ह्यो ॥
कियो सयन इमि दिवस विताई ।
चौथे पहर उठ्यो नरराई ॥
नाव - विहार हिये मँह ठयऊ ।
सरवर निकट भूप चलि गयऊ ॥
आई तहाँ सजी वहु तरनी ।
सोभा अमित जाय नहि वरनी ॥
चढ्यो भूप आनन्द वढाई ।
लीन्हें साथ सुभट - समुदाई ॥
तहँ केवट हिय होड़ लगाये ।
लिये जात निज तरनि भगाये ॥

(७)

दोहा – गायक गौरी रागिनी गावत लेत अलाप ।
बजत बीन अरु परत पुनि वर मृदग पै थाप ॥

तौ लगि धवल छटा छिटकाई ।
नभ - पथ देखि पर्‌यो तिमिराई ॥
तव नृप ससि - दिसि लखि मुसकाई ।
कह्यो कविन सन गिरा सुनाई ॥
रजनिनाथ पै छन्द वनावहु ।
निज निज उक्ति विचित्र सुनावहु ॥
कह कवि "विम्व सान सम देखी ।
ता मधि कछुक अरुनता लेखी ॥
यहि विष ज्वालमयी कर हेरी ।
समि न कहत मति विरहिन केरी ॥
निसि मँह रवि न परत कहुँ लेखी ।
कढत सिन्धु वडवागि विसेखी" ॥

कोउ कह "यह विधु है न अतूल्यो ।
नभ-सुरसरि-सरोज वर फूल्यौ" ॥
कोउ कह हर जब मैन जरायौ ।
जौ लगि सब तनु जरन न पायौ ॥

(८)

दोहा—विधि खैंच्यौ हर-भाल की ज्वाल-माल सौं काम ।
छार भयौ तन पै लसत, आनन अति अभिराम ॥"

छन्द प्रबन्ध सुनत कवि केरो ।
तिन तन नृपति मुदित मन हेरो ॥
विनती सचिव कीन्ह कर जोरी ।
नाथ! भई अब देर न थोरी ॥
याते सिविर ओर मग लीजै ।
प्रजन जान गृह आयसु दीजै ॥
सचिव-गिरा सुनि हिय हरखाई ।
चल्यौ सिविर दिसि सुभट-सहाई ॥
अन्तपुर भूपति पगु धारे ।
इत सब प्रजनि सचिव लौटारे ॥
तँहँ प्रात अहेर सुहायो ।
नृप-निदेस तिन सबनि सुनायो ॥
ते सब मुदित गये निज धामा ।
कहत सुनत-नृप कीर्ति ललामा ॥
स्रम निवारि नृप भोजन कीन्ह्यो ।
रानी हँसि तमोल मुख दीन्ह्यो ॥

(९)

दोहा—सुघर फेन-सी सेज पै, कीन्हो सैन महीप ।
सुनि चारन- बिरुदावली, जग्यो सूर्य-कुल-दीप ॥

प्रात - क्रिया विविवत निपटाई ।
समिटे सकल सुभट समुदाई ।।
करन जाल अरु स्वानन लीन्हे ।
गवने चर अहेर मन दीन्हे ।।
इत सेवक-गन सिविर उखारी ।
नव पडाव-हित कीन तयारी ।।
सकट लादि चलि वहु पथ आये ।
हिमगिरि-श्रृंग देखि तिन पाये ।।
तहँ सुपास सब भाँति विचारी ।
कीन पडाव रुचिर पद - चारी ।।
इत महीप लै सुभट - समाजा ।
प्रविस्यो वन अहेर के काजा ।।
कोऊ कुन्त कोऊ असि लीन्हें ।
कोउ सर चोपि चाप पै दीन्हे ।।
हय - खुर - रेनु उडत यहि भाँती ।
दिन ही होन चहत मनु राती ।।

(१०)

दोहा—यहि विधि नृप सुभटनि सहित, कानन पहुँचे जाय ।
दियो धनुष-टकार सों, सोवत सिंह जगाय ।।

व्याधन दियो स्वानगन छोरी ।
चपला - सरिस चले धन फोरी ।।
हरिन - यूथ एक चरत लखान्यो ।
तेहि लखि भूप सरासन तान्यो ।।
पै कर वान न छूटन पायो ।
धाय कुरंगहि स्वान गिरायो ।
भजे अपर मृग भय - वस जेते ।
मार्‍यो भूप बन सन केते ।।

भाजत हरिन कहत इमि जाही ।
प्रिया भीति तुम कहँ कछु नाहीं ॥
तिय दृग सम तुव नैन निहारी ।
तुम कहँ भूप सकत नहिं मारी ॥
सावक पै नहिं बान चलैहै ।
नृप विवेक विसराय न देहै ॥
भागत अपर कुरंग लखान्यो ।
तेहि करि लच्छ चाप नृप तान्यो ॥

(११)

दोहा—लखि सन्मुख वाके खडी, मृगी देह निज आँडि ।
सदय हृदय भूपालमनि, सायक सक्यो न छाँडि ॥

तब लगि घोर सब्द एक भयऊ ।
नृप तेहि ओर दीठि निज दयऊ ॥
तहँ भल्लूक नाहरहि प्रचारी ।
लरत धरत नहि पाँव पछारी ॥
वारिदनाद पञ्च-मुख कीन्ह्यो ।
भल्लूक गरजि उतर तेहि दीन्ह्यो ॥
चढ्यो कोपि केहरि-सिर जाई ।
सटा उपारि दियो बगराई ॥
विषम घाव कन्धन पर कीन्ह्यो ।
सोनित मकरु चूसि पुनि दीन्ह्यो ॥
हन नाहर सर नखर प्रहारी ।
दियो तासु जिमि उदर विदारी ॥
अन्तावली परी महि आई ।
आमिष तासु लग्यो सुख पाई ॥
दोऊ सिथिल परे महि भारी ।
तेऊ त्याग दीन्ह पुनि नारी ॥

(१२)

दोहा—तौ लगि सिंहिनि कोप सों, कीन्हे लोचन लाल ।
करत घोर रव भूप दिसि, सर-सम चली उताल ॥

तेहि आवत लखि सचिव सुजाना ।
सर सधानि सरासन ताना ॥
विचुक्यो वाजि कछू हटि जाई ।
या ते ना तन चोट न आई ॥
चाह्यो झपटि अस्व गर लीन्हा ।
वाजि घुमाय भूप निज दीन्हा ॥
ह्वै सकोप करबाल प्रहारा ।
कीन्ह काटि सिंहिन जुग फारा ॥
निदरि मीचु एक बिकट बराहा ।
तेहि खन कानन-सर अवगाहा ॥
घुरघुरात पुनि भूपति ओरा ।
चला वराह करत रव घोरा ॥
तकि तकि तीरन सुभट चलाये ।
पै नहि सक्यो कोल बिचलाये ॥
लोचन अरुन कढत जनु ज्वाला ।
खड़े स्रवन धायो मनु काला ॥

(१३)

दोह—हन्यो कोपि नृप कुन्त सिर, निकरि गयो ओहि पार ।
छूटी पिचिकारी सरिस, अरुन रुधिर की धार ॥

लोटन अवनि लग्यो घुरराई ।
खैंचि कृपान लीन्ह नरराई ॥
हन्यो कोप करि घाव प्रचडा ।
काटि वराह कीन्ह जुग खडा ॥

करत घोर रव सृग उठाये ।
तहँ वन-महिष काल वस आये ॥
निरखि निकट सैनिक -सर मारा ।
ताहि गिराय गिरयो इषु पारा ॥
गेंडा एक प्रचारत आयो ।
जनु कज्जलगिरि चलत सुहायो ॥
तेहि लखि भूप चाप कर लीन्हो ।
या विधि वान प्रहारन कीन्हो ॥
सरनि मारि ताको मुख भरेऊ ।
तदपि अमित वल भूमि न परेऊ ॥
सर पूरित वड वदन पसारी ।
सोह्यो काल - श्रोन अनुहारी ॥

(१४)

दोहा—ताहि सिथिल-वल देखि इमि, लीन्हो दृढ गुन वाँधि ।
मुदित व्याधगन सिविर दिसि, चले ताहि लै साधि ॥

तीजो पहर जानि तेहि काला ।
चलेउ सिविर कहँ आपु नृपाला ॥
सखा सचिव अनुचर सँग लागे ।
चले बाजि चढ़ि भूपति आगे ॥
कतहुँ सस्य स्यामल सु रसाला ।
सून्य सून बन कतहुँ कराला ॥
झरना झरत नाद करि भूरो ।
अरु धुनि घोर कन्दरनि पूरो ॥
सरित - कूल तरु - जूह सोहाये ।
जहँ खग - वृन्द नचत छवि छावे ॥
तहँ बहु कुटरुदैया आवत ।
विहग - जाल चोंचनि खटकावत ॥

लहि आहट तहँ कीरन केरी ।
फारत छाल न लावत देरी ।।
कीट चचु - मधि आपुहि जाही ।
खग-गन तिनहि मुदित मन खाही ।।

(१५)

दोहा—गिरत सुमन बनगज जबहि, घिसत कुम्भ तरु जाय ।
सरि पूजा हित कुसुम जनु, रहे विटप बरसाय ।।

कहुँ कीचक तरु - पुजनि माही ।
घोर उलूक - भीर घुघुआही ।
सो धुनि सुनि बायस भय पाई ।
इत उत उडत न परत लखाई ।।
कहुँ बोलत वन - मोर सोहाये ।
जेहि सुनि व्याल दर्प विसराये ।।
परम - जठर - चन्दन - तरु जाई ।
सहमे लपटि रहे घबराई ।।
कानन सघन पार करि आये ।
वन सुरम्य पुनि मिले सुहाये ।।
नभचर - बृन्द मुदित मन गाई ।
रहे भूप - जस मनहुँ सुनाई ।।
सुमन - जाल तरु - जूह गिरावत ।
नृप-हित जनु पावडे विछावत ।।
सरसिज सरनि लसत अभिरामा ।
जोरि पानि जनु करत प्रनामा ।।

(१६)

दोहा—अरुन सुकोमल किसलयनि, पादप-पुञ्ज डुलाय ।
मानहुँ दैत्य - नरेस कँह, वन-दिसि रहे बुलाय ।।

इमि वन लखत चले नृप जाहीं ।
अधिक उछाह भरे मन माहीं ॥
उतै अमित - रव हयनि भगाई ।
अस्ताचलहिं चले दिन - राई ॥
तारक - वृन्द हँसे नभ आई ।
पै न सकें तम - तोम हटाई ॥
गिरि पर इत उत लसत उजेरी ।
लखि मति भ्रमित भई नृप केरी ॥
कह चर नाथ! ओषधिन पाँती ।
करत प्रकाश दिया सम राती ॥
तौ लगि सर्व शिविर पगुधारी ।
धर्यो अस्त्र अरु कवच उतारी ॥
सेवक दियो झारि पग धूरी ।
गहि पद कियो मार्ग - श्रम दूरी ॥
अन्तःपुर महीप पग दीन्ह्यो ।
आगे चलि रानी तेहि लीन्ह्यो ॥

(१७)

दोहा—भोजन नृपहिं करायकै, बहुरि खवायो पान ।
चरन चापि निंदिया लियो, भई निशा अवसान ॥

प्रात - क्रिया विधिवत निपटाई ।
गिरि-छवि लखन चले नरराई ॥
चर गिरि नग नृपहिं दिखरावे ।
धरे शीश हिम - मुकुट सुहावे ॥
दिनकर - प्रथम - किरन अभिरामा ।
तेहि पड़ोत करन तेहि ठामा ॥
शिखर - शिखर चाहि तम भागो ।
कुंज - लता लखन अनुरागो ॥

लहि आहट तहँ कीरन केरी ।
फारत छाल न लावत देरी ॥
कीट चचु - मधि आपुहि जाही ।
खग-गन तिनहि मुदित मन खाही ॥

(१५)

दोहा—गिरत सुमन बनगज जबहि, घिसत कुम्भ तरु जाय ।
सरि पूजा हित कुसुम जनु, रहे बिटप बरसाय ॥

कहुँ कीचक तरु - पुजनि माही ।
घोर उलूक - भीर घुघुआही ।
सो धुनि सुनि वायस भय पाई ।
इत उत उडत न परत लखाई ॥
कहुँ बोलत बन - मोर सोहाये ।
जेहि सुनि व्याल दर्प बिमराये ॥
परम - जठर - चन्दन - तरु जाई ।
सहमे लपटि रहे घबराई ॥
कानन सघन पार करि आये ।
वन सुरम्य पुनि मिले सुहाये ॥
नभचर - बृन्द मुदित मन गाई ।
रहे भूप - जस मनहुँ सुनाई ॥
सुमन - जाल तरु - जूह गिरावत ।
नृप-हित जनु पावडे बिछावत ॥
सरसिज सरनि लसत अभिरामा ।
जोरि पानि जनु करत प्रनामा ॥

(१६)

दोहा—अरुन मुकोमल किसलयनि, पादप-पुञ्ज डुलाय ।
मानहुँ दैत्य - नरेस कँह, बन-दिसि रहे बुलाय ॥

इमि बन लखत चले नृप जाहीं ।
अधिक उछाह भरे मन माहीं ॥
उतै अमित-रव हयनि भगाई ।
अस्ताचलहि चले दिन-राई ॥
तारक-वृन्द हँसे नभ आई ।
पै न सके तम-तोम हटाई ॥
गिरि पर इत उत लसत उजेरी ।
लखि मति भ्रमित भई नृप केरी ॥
कह चर नाथ! ओषधिन पाँती ।
करत प्रकाश दिया सम राती ॥
सो लखि सर्व सिविर पगु धारी ।
धर्यो अस्त्र अरु कवच उतारी ॥
सेवक दियो झारि पग धूरी ।
गहि पद कियो मार्ग-श्रम दूरी ॥
अन्तःपुर महीप पग दीन्ह्यो ।
आगे चलि रानी तेहि लीन्ह्यो ॥

(१७)

दोहा—भोजन नृपहि करायकै, बहुरि खवायो पान ।
चरन चापि निंदिया लियो, भई निसा अवसान ॥

प्रात-क्रिया विधिवत निबटाई ।
गिरि-छवि लखन चले नरराई ॥
चर गिरि सग नृपहि दिखराये ।
धरे सीस हिम-मुकुट सुहाये ॥
दिनकर-प्रभा-मिलन अभिरामा ।
जेहि रङ्गीन लसत तेहि ठामा ॥
किन्नर-मिथुन थाकि मन भागी ।
सुर-गन गान अनुरागी ॥

जहँ केहरि बन - गजन गिराये ।
अरु तुषार मग चिन्ह दुराये ॥
गज - कुम्भज - मुक्तनि अनुसारी ।
तउ किरात मग लेत बिचारो ॥
दिनकर - करनि अमित भय- पाई ।
गुहा माहि तम रहत लुकाई ॥
गिरि - सम धीर वीर जगमेंही ।
अभय - दान आस्रित कहँ देही ॥

(१८)

दोहा——करि कम्पित सुर-द्रुमनि, लहि, गगसलिल कन वात ।
मृग खोजत बन महँ थके, सेवत ताहि किरात ॥

हिम - गिरि - अक सीत अधिकानी ।
भूपति राज चलन मन आनी ॥
तव लगि उत वसत-रितु आई ।
दियो सकल नव साज सजाई ॥
राजा दोउ सग पुर आये ।
प्रजनि अमित आनन्द मनाये ॥
पुहुप पाँवडे तरुन बिछाई ।
गुच्छनि बदनिवार तनाई ॥
लता प्रतान ललित चहुँ छाये ।
सुघर वसन्त कोकिलन गाये ॥
दै कचनार अनारनि लाली ।
बौरे अम्बनि दीन वहाली ॥
नूतन सुमन गुलावनि पाये ।
अरु मधु लेन ललकि अलि आये ॥
ह्वै पलास अध - जरे अँगारा ।
लगे करन विरहिन - हिय छारा ॥

(१९)

दोहा—जागन लग्यो मनोज अब, जोगिन के जियरान ।
दिवस लग्यो अधिकान कछु, लगे पान पियरान ॥

बिगत बसन्त तपन रितु आई ।
लुवें चलीं, गई रमा सुखाई ॥
बिरह बसन्त दुरन्त उदासा ।
लुव-मिसि ग्रीषम लेतु उसासा ॥
पवन निकुञ्ज माहि ठहरानी ।
छाँहहु छाँह पाइ बिरमानी ॥
बिहगन एक मग बन माहीं ।
पै त्रासत मृग कहँ हरि नाहीं ॥
सर-तड़ाग-सरि सकल सुखानी ।
रह्यो दृगनि मोतिन असि पानी ॥
करन-जाल इमि भानु पसारयो ।
मनहुँ सेष फन-ज्वाल निवारयो ॥
कै बड़वागि कोप अति कीन्ह्यो ।
तीजो नैन खोलि हर दीन्ह्यो ॥
कौनेहु बिधि नहिं तपा बुझानी ।
मिलत न नभ-गंगा में पानी ॥

(२०)

दोहा—यहि बिधि दुसह दुरन्त अति नृप ग्रीषम को दाह ।
जल-बिहार हित नलिनि-ढिग, आयो रतिन उछाह ॥

सचिव सिविर सरि-कूल सँवारे ।
डारि जाल बहु नक्र निकारे ॥
जहँ सरि-तीर सघन कुसुमन छाये ।
वल्लिन-वलित निकुञ्ज सुहाये ॥

रानि संग तेहि ठाउँ अनूपा ।
पहुँचे आय दैत्य - कुल - भूपा ॥
तरनि चढ़ाय तरुनि अनुरागी ।
नाव मलाहिन खेवन लागी ॥
सुनि नूपुर - धुनि राजमराला ।
चितवन चकित लगे तेहि काला ॥
कछुक दूरि सरि मधि इमि जाई ।
जल महँ फाँदि पर्‍यो नर-राई ॥
दोऊ निज दीरघ बाहु पसारी ।
अंकम भरि नृप तियनि उतारी ॥
नाभि - भँवर - भ्रू - वीचि सुहाये ।
कुच - युग चक्र-वाक जनु आये ॥

(२१)

दोहा—कोटि लौं जल महँ भूप-तिय, करन लगी जल-केलि ।
लखत मुदित भूपालमनि, आनँद अमित सकेलि ॥

जल बिच इमि तियगन छबि छाई ।
कमला मनहु आपु चलि आई ।
तिय-मुख नीर-मध्य इमि राजत ।
कुसुमनि कमल वेलि जिमि छाजत ॥
अंजलि भरि जल रानि उछारत ।
नहि उपमा कछु बनत विचारत ॥
जनु अम्बुज भरि कोसनि माहीं ।
मुक्त - गुच्छ जल डारत जाहीं ॥
सखि वर सलिल वदन पर डारी ।
मृग - मद - बिन्दु धोव सुकुमारी ॥
मनहुँ कमल जल-नात विचारी ।
दीन्ह मयंक कलंक पखारी ॥

कहूँ अरुन अँगराग सोहायो ।
मृग - मद - चंदन संग धोवायो ॥
मिलि सरि-छटा लसत छवि देनी ।
मनहुँ आपु तहँ बहत त्रिवेनी ।

(२२)

दोहा—यहि विधि करि जलकेलि नृप, सोहत रानिन साथ ।
जनु नभ-गंग-विहार-रत, तियन संग सुरनाथ ॥

सरिते नृप तरनी पर आये ।
पकरि बाँह पुनि तियनि चढाये ॥
कुन्दन बरनि पीत रँग सारी ।
ठाढ़ी केस निचोरत प्यारी ॥
दीन्ह अमित - कर त्रिधुहि दबाई ।
परे अमित मुकता चुचुआई ॥
गात अँगोछि पहिरि नव सारी ।
पुनि वर केस-कलाप सँवारी ॥
दियो भाल मृग-मद को टीको ।
जेहि लखि चन्द लगत अति फीको ॥
रानिन महँ भूपति यहि भाँती ।
जनु ससि घिरयो तरैयनि पाँती ॥
खेवटिनी मन अति अनुरागी ।
तट दिसि नाव चलावन लागी ॥
पुलिन निकट वालुका [illegible] ।
[illegible] जनु [illegible] [illegible] ॥

(२३)

दोहा—इमि नरपति निज तियनि सँग, [illegible] ।
[illegible] निज [illegible] गये, [illegible] न [illegible] [illegible] ॥

जथा समै रितु - तपन सिरानी ।
अरु आई बरषा सुखदानी ॥
गरजन लगे जलद अतिघोरा ।
लीन्हो नभहि घेरि चहुँओरा ॥
इमि चहुँदिसि छायो अँधियारा ।
सूझ न आपन हाथ पसारा ॥
बिछुरत मिलत चकन अवरेखी ।
निसि-दिन भेद परत कछु लेखी ॥
निसि मँह ससि नहि परत लखाई ।
पै नभ इन्द्र-चाप दरसाई ॥
मूसरधार परत छिति पानी ।
पलुही धरा बहुरि हरियानी ॥
कृसता मिटी कलोलिनि केरी ।
जिमि प्रोषितपतिका पिय हेरी ॥
स्याम घटा लखि चातक गाये ।
नटत मयूर पख फैलाये ॥

(२४)

दोहा—हरित भूमि पै लसत इमि, इन्द्र वधू छविधाम ।
मनहुँ मही पन्नामई, मानिक जटिल ललाम ॥

इक दिन स्याम घटा नभ छाई ।
रानी नृपसन कह्यो सुनाई ॥
एतो कहो हमारो कीजै ।
झूला आजु झूलि सँग लीजै ॥
नृप - कर गहि उद्यान पधारी ।
जहाँ सखी सब गई अगारी ॥
रजत - खम्भ मखतूलनि डोरी ।
पटुली मनि - कंचन सौं जोरी ॥

तिय-सँग बैठि गये मनभावन।
दै मचकी सखि लगी झुलावन॥
झूलत पेंग बढन जब लागी।
तिय पिय कंठ लगी भय पागी॥
फहरति रुचिर सौसिनी सारी।
हँसत भूप-भुज मूल निहारी॥
कहत सखी दिसि भौंह तरेरी।
मचकी दै न बीर तनु मेरी॥

(२५)

दोहा—कोउ मृदंग कोऊ बीन बर, कोउ कर लिये सितार।
नाचन बाम अनन्द सों, गावन मेघ-मलार॥

वर्षा विगत सरद-रितु आई।
पके धान चहुँ ओर सुहाई॥
चहुँ दिसि लसत धवल छवि कासा।
घन विहीन भो विमल अकासा॥
परत न इन्द्र-चाप कहुँ देखी।
जुग छनदा न परै अवरेखी॥
अब न पपी निज बक फटकारैं।
नभ दिसि सुर न उडार निहारैं॥
आई तो लगि सुदिन दिवारी।
दीप-पाँति बहुभाँति सँवारी॥
खेल्यौ नृप-सँग पसासारी।
तन-मन हारि गई दोउ हारी॥
बनी सरद निसा उजियारी।
[illegible] [illegible] हित [illegible] [illegible]॥
[illegible]-मित्र नृप [illegible] [illegible]।
[illegible]-[illegible] [illegible]-[illegible] [illegible]॥

(२६)

दोहा—प्रमदा - जन - नखतावली, अरु रानी-मुख - चन्द ।
अम्बर - आरसि में लसत जनु प्रतिबिम्ब अमन्द ॥

रितु हेमन्त आय नियरानी ।
लगत तुषार - सरिस अब पानी ॥
सीत भीत पुहुमी भय पागी ।
पाला गात दुरावन लागी ॥
तपत तपाकर को ससि जानी ।
विरह - विकल चकई मुरझानी ॥
अनल - तापि तन भे जनु जोगी ।
जोगी बनन चहत सब भोगी ॥
घाम परत चाँदनि सम लेखी ।
रजनी सरिस दिवस अवरेखी ॥
दिनहि कुमोदिनि बिकसन लागी ।
लखत चकोर ससिहि भय त्यागी ॥
दिनमनि हू अब सीत सताये ।
रहे जाय घन - रासि सुहाये ॥
भामिनि मान मरूर बिसारी ।
बाहु मृनाल पिया - गर डारी ॥

(२७)

दोहा—सीतल-जल अरु सुरत-सुख, लहत अजाचित कन्त ।
सुखद सुहागिन - तियन कँह, केवल रितु हेमन्त ॥

लागत सिसिर सीत भइ गाढी ।
लघु भौ दिवस जामिनी बाढी ॥
तियनि साथ नृप मकर नहाये ।
दिये दान बिप्रन मन भाये ॥

इत पाँचैं बसन्त की आई।
सरसों फूलि रही पियराई॥
पके सालि अरु ऊख सुहाई।
बौर रसालनि परयो लखाई॥
माती कोयलियाँ अनुरागी।
फाग सुरागनि गावन लागी॥
सिवव्रत मुदित महीपति कीन्ह्यो।
उमा - महेस थापि तहँ दीन्ह्यो॥
फाग खेलि दोउ रानिन साथा।
मलेउ गुलाल मुदित नरनाथा॥
अरु निसि माहि जरायो होरी।
भेटउ प्रात सुजन उर जोरी॥

(२८)

दोहा—यहि विधि प्रमुदित महिप मनि, केतिक बरस बिताय।
कियो राज्य पाल्यो प्रजा, सिव-पद-पंकज ध्याय॥

(२९)

उर ध्याय सिव-पद - कंज यहि बर ग्रंथ की रचना करी।
सुभ होलिका अरु चरन ग्रह रस इन्दु में पूरन परी॥
जे आपु पढ़िहैं याहि अथवा रसिक जननि पढ़ाइहैं।
ते निखिल नाटक राग चारु, पुरान सो रस पाइहैं॥

(३०)